www.thearyasamaj.org

R.N.I. No. 2321/57

दिसम्बर 2013

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15

अंक 11

तपोभूमि

मासिक

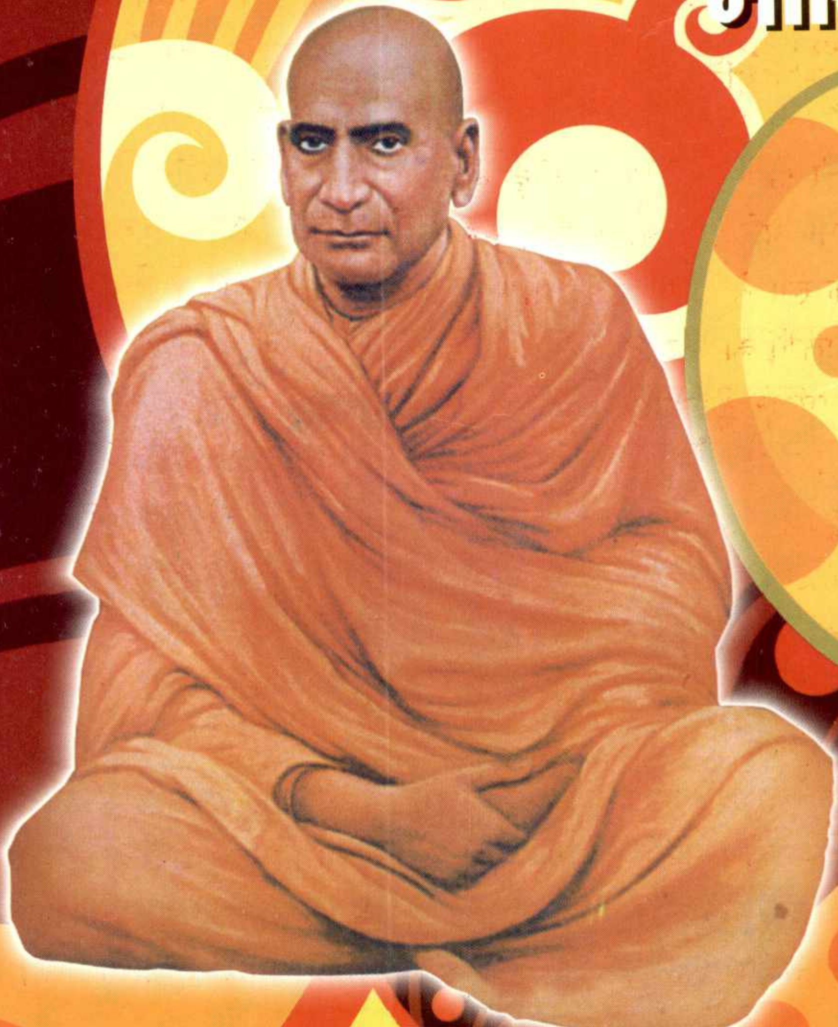

अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती

(1856-1926)

23 दिसम्बर बलिदान दिवस

www.thearyasamaj.org

सम्पादकीय

देशोद्धार के लिए आवश्यकता है पुनः श्रद्धामूर्त्ति स्वामी श्रद्धानन्द जी की !

आज जो परिस्थितियाँ देश के पुनः विघटन की हमारे कर्णधार नेताओं व तथाकथित बुद्धिजीवियों द्वारा बनाई जा रही हैं वे अत्यन्त भयावह हैं। सामाजिक समरसता के नाम पर तुष्टीकरण की नीति और 21वीं सदी के विकसित समाज के नाम पर सामाजिक बन्धनों को तोड़ने के लिए नई पीढ़ी को उद्दण्ड और मर्यादाहीन किया जा रहा है। उसके जो भयानक परिणाम आ रहे हैं वे अत्यन्त शोचनीय हैं। शिक्षा के नाम पर सरकार ने या वैयक्तिक रूप से लोगों द्वारा खोले संस्थान मात्र लूट-पाट के केन्द्र बनकर रह गये हैं। महाविद्यालयों को वेश्यालय कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। धार्मिक आन्दोलनों के नाम पर मन्दिर, मस्जिद, गिर्जाघर या गुरुद्वारे सब के सब भोगाधिष्ठान बन कर रह गये हैं। समाचार पत्रों और दूर-दर्शनों पर तो आये दृश्यों या समाचारों को देखकर लज्जा को भी लज्जा आ जाये पर इन साधनों को परोसने वालों को मानो निर्लज्जता ने अपनी चादर ही उढ़ा दी है। दूर-दर्शनों में सामाजिक-सभ्यता के नाम पर की जाने वाली वाद-विवाद की वार्त्तायें देखकर तो ऐसा लगता है कि संस्कृति को तार-तार करने की इनमें होड़ लगी है सर्वत्र पतन ही दिखाई दे रहा है ऐसा लगता है कि बाड़ स्वयं ही खेत को उजाड़ रही है।

राजनेताओं, शिक्षकों, धर्मगुरुओं, चिकित्सकों, सुरक्षाकर्मियों आदि में जिसे देखो वही मानवीय मूल्यों की धज्जियाँ उड़ाता दिखाई देता है। सर्वत्र गिद्धों और बगुलों की वृत्ति वाले लोगों का ही बोलवाला हो रहा है। सभ्यजनों! ध्यान रहे कोई वृक्ष कैसा ही फलदार सुन्दर और हरा-भरा हो, यदि उस पर गिद्धों और बगुलों ने अपना आश्रय बना

-शेष पृष्ठ सं. 35 पर

www.thearyasamaj.org

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–59 | संवत्सर 2070 | दिसम्बर 2013 | अंक 11

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

दिसम्बर 2013

सृष्टि संवत्
1960853114

दयानन्दाब्दः 190

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
सम्पादकीय	–आचार्य स्वदेश	
वेदवाणी	–ध्रुवदेव परिव्राजक	4
दयानन्द दिग्विजयम्	–आचार्य मेधाव्रत	5–8
योगेश्वर कृष्ण	–पं0 चमूपति	9–12
ज्ञान विज्ञान योग	–डॉ0 सोमदेव शास्त्री	13–16
आर्ष–पाठविधि की उपयोगिता.....	–डॉ0 सुरेन्द्रकुमार आचार्य	17–20
धूर्त जन	–ओमप्रकाशसिंह	21–22
वृहद विमान शास्त्र	–कृपालसिंह वर्मा	23–24
वेदों में पुनरुक्ति दोष नहीं	–पं. बिहारीलाल शास्त्री	25
मन का भार हल्का रखिये	–डॉ0 रामचरण महेन्द्र	26–28
शान्ति बाहर नहीं भीतर खोजनी पड़ेगी	–	29
रानी झाँसी और डाकू सागरसिंह	–चन्द्रशेखर	30–32
सफलता से दूर क्यों भागते हो?	–डॉ0 धीरेन्द्र मेहता	33–34

❁ ❁ ❁

वार्षिक शुल्क 150/ पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

www.thearyasamaj.org

वेदवाणी

लेखकः स्वामी ध्रुवदेव परिव्राजक आर्यवन रोजड़, (गुज.)

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्।। -(ऋ. मं. 10/सू. 121/मं. 10)

पदार्थः-

हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी रक्षक परमात्मा ! (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई पदार्थ (ता) उन (एतानि) इन (विश्व) सब (जातानि परि बभूव) उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को नहीं तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं या इन सब पर बलवान् हैं या इन सब उत्पन्न हुए जड़ चेतनादि में व्याप्त हैं। अतः (यत्कामाः) जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले होकर (वयम्) हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें या आपकी प्रशंसा करें या उपासना करें (तत्) वह-वह कामना के योग्य वस्तु (नः) हमको (अस्तु) आपकी कृपा से प्राप्त होवे जिससे (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) विद्या सुवर्णादि धनों के (पतयः) रक्षक स्वामी (स्याम) होवें। -(सं. वि +ऋ. दया. कृत यजुर्वेदभाष्य)

भावार्थ (1):-

जो परमेश्वर से उत्तम, बड़ा, परमैश्वर्ययुक्त, सर्वशक्तिमान् पदार्थ कोई भी नहीं है तो उसके तुल्य भी कोई नहीं। जो सब का आत्मा, सब को रचने वाला, समस्त ऐश्वर्य का दाता ईश्वर है उसी की भक्ति विशेष और अपने पुरुषार्थ से इन लोक के ऐश्वर्य और योगाभ्यास के सेवन से परलोक के सामर्थ्य को हम लोग प्राप्त हों। -(ऋ. दया. कृत यजुर्वेदभाष्य अ. 10/मं. 65)

भावार्थः (2)-

हे मनुष्यों ! जो सब जगत् में व्याप्त है, सब के प्रति माता पिता के समान वर्त्तमान है उस जगदीश्वर की ही उपासना करो। इस प्रकार अनुष्ठान से तुम्हारी सब कामनायें अवश्य सिद्ध होंगी।
-(ऋ. दया. कृत यजुर्वेदभाष्य अ. 10/मं. 20)

❀❀❀

www.thearyasamaj.org

दयानन्द दिग्विजयम्

लेखकः आचार्य मेधाव्रत

नवमः सर्ग

ओखीक्षेत्राज्ज्योतिराख्यं मठं स प्राप्तज्योतिः संययौ संयमीशः।
यत्राभूवन्नुच्चचारित्र्यवन्तः संन्यासीन्द्रा दाक्षिणात्या महान्तः॥ 1॥

ब्रह्मज्योति को प्राप्त करने वाले संयमीश्वर दयानन्द ओखीमठ से ज्योतिर्नामक मठ में जा पहुँचे, जहाँ उच्च चरित्रशाली दाक्षिणात्य महात्मा संन्यासी रहते थे॥ 1॥

तत्सत्संगं पुण्यमासाद्य तेषां मध्यात्केषाचिंत्सकाशात्स योगी।
पुण्यश्लोको योगविद्यारहस्यं लब्ध्वा बद्रीनाथतीर्थं जगाम॥ 2॥

पुण्यश्लोक दयानन्द उनमें से कतिपय महात्माओं की पवित्र संगति प्राप्त कर योगविद्या के रहस्य जान बद्रीनाथ धाम चले गये॥ 2॥

आसीत्पण्डारावलाख्यो मठेशोविख्यातो यस्तेन साकं वसन्त्सः।
वादं वेदाद्यागमान्तर्वितन्वन् कचिंत्कालं यापयामास देवः॥ 3॥

देव दयानन्द बद्रीनाथ में विख्यात मठाधीश रावलजी नामक पण्डा के यहाँ रहे और यहाँ वेदादि शास्त्रों के सम्बन्ध में विचार करते हुए कुछ समय बिताया॥ 3॥

योगी कश्चित्सत्ययोगप्रवीणः शैलेन्द्रेऽस्मिन् वर्तते वा न धीमन्।
इत्यापृष्टः पण्डितो रावलोऽमुं खिन्नोऽगादीन्नेति तादृक् सुसिद्धः॥ 4॥

स्वामीजी ने रावलजी से एक दिन पूछा कि-इस पर्वत में कोई सच्चा योगी है या नहीं? रावलजी ने खिन्न होकर कहा कि-ऐसा कोई सिद्धयोगी नहीं है॥ 4॥

आयात्यस्मिन्मन्दिरे कन्दरेभ्यः प्रायो योगिव्यूह एवं मया सन्।
अश्राव्यद्वाऽऽख्यत्पुनस्तं यदाऽसावन्वेष्टुं तान्निश्चिकायैष सिद्धान्॥ 5॥

बाद में रावलजी ने कहा कि कभी-कभी कंदराओं से योगिजन इस मन्दिर में आ जाया करते हैं, ऐसा सुना है। इसलिये स्वामीजी ने उन्हें अन्वेषण करने का निश्चय किया॥ 5॥

अह्न्येकस्मिन् पदिमनीन्द्रोदयेऽयं बद्रीनाथात्पर्वतप्रान्तपादम्।
आलम्ब्य श्रीलो दयानन्ददेवः सोत्कस्वान्तः प्रास्थितानन्दशीलः॥ 6॥

एक दिन आनन्दी दयानन्द सूर्योदय के समय बद्रीनाथ से उत्तर की ओर तलेटी से होकर उत्सुकता

www.thearyasamaj.org

पूर्वक चल पड़े॥ 6॥

आसाद्यान्तेऽलक्ष्यनन्दातटं स ग्रामं तस्या अन्यतीरे विलोक्य।
तत्रागत्वा तत्तटेनैव यातोरम्योत्पत्तिस्थानमीडयो हिमाढ्यम्॥ 7॥

चलते-चलते स्वामीजी अलखनन्दा के दूसरे किनारे पर एक गाँव देखकर उस ओर न जाकर अलखनन्दा नदी के किनारे-किनारे ही उसके बर्फीले उद्‌गम स्थान को देखने की इच्छा से आगे ही चलते रहे॥ 7॥

क्रान्त्वा कष्टैर्दुर्गमं मार्गमद्रेः प्रालेयालीप्रावृतप्रान्तमाप्तः।
सर्वत्रासौ व्योमसंस्पर्शिशृंग क्ष्माभृन्मालामालुलोके विशालाम्॥ 8॥

वे बर्फ से ढके हुए इस पर्वत के दुर्गम मार्गों को बड़े कष्ट से लांघ कर एक ऐसे स्थान पर आ पहुँचे जहाँ चारों ओर आकशभेदी विशाल पर्वतमाला सिवाय और कुछ भी दिखाई नहीं देता था॥ 8॥

गोत्रै रुद्धे सर्वतोऽसंस्तुतेऽत्र स्थाने मार्गं वर्त्मलक्ष्मापि किंचित्।
नाप्त्वा कार्ये मूढचित्तः क्षणं सन् पारं गन्तुं निश्चिकायापगायाः॥ 9॥

चारों ओर पर्वतमाला घिरी थी। इस अपरिचित स्थान में रास्ते का कोई चिन्ह भी न था। ऐसी अवस्था में थोड़ी देर के लिये स्वामीजी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। अन्त में कोई रास्ता न पाकर नदी पार करने का ही निश्चय किया॥ 9॥

वासांस्यासन्नल्पमात्राणि गात्रे शीतो वातो देहभिद् बाणतुल्यः।
क्लान्तः कायः क्षुत्पिपासाकुलत्वादस्याभूत्तद्धैमखण्डं स आदत्॥ 10॥

स्वामीजी के शरीर पर वस्त्र भी बहुत ही थोड़े थे। ठण्डी हवा बाण की तरह शरीर को भेदती थी। भूख और प्यास के कारण व्याकुल शरीर थक चुका था, इसलिये स्वामीजी ने बुभुक्षानिवृत्ति के लिये बरफ का एक टुकड़ा मुंह में डाल लिया॥ 10॥

शान्तिं नाप्ते तद्‌बुभुक्षापिपासे किन्तूत्साहस्तां तरीतुं तदाऽऽसीत्।
पात्रं यस्याः पंक्तिहस्तप्रमाणं गाधागाधं तौहिनाश्माम्बुपूर्णम्॥ 11॥

बरफ का टुकड़ा खाने पर भी स्वामीजी की भूख और प्यास न गई। तो भी इन में नदी पार कर जाने का पूर्ण उत्साह था। नदी का पाट लगभग 10 हाथ था। नदी कहीं गहरी और कहीं छिछली तथा बर्फीले पत्थर के टुकड़ों से भरी थी॥ 11॥

तस्याः पारं गच्छतस्स्वामिनोऽघ्रंगी हैमग्राव्णां कोटिभिर्विद्धमूलौ।
रक्तं ताभ्यां प्रावहद् यत्क्षताभ्यां नीहारार्त्तौ नष्टसंज्ञावभूताम्॥ 12॥

उस नदी से पार जाते हुए स्वामीजी के पैर नोकदार बर्फीले पत्थरों से लहुलुहान हो गये। क्षत-विक्षत दोनों पैरों से खून बहने लगा और दोनों पैर बर्फ से सुन्न हो गये॥ 12॥

मध्येधारं वीतचैतन्यकल्पः कायः पातायोद्यतो यावदस्य।
संगृह्यासौ सर्वशक्तिं स्वबुद्धया तीरं प्राप्तः साहसैः क्लेशजिष्णुः॥ 13॥

www.thearyasamaj.org

बीच धार में जाते–जाते स्वामीजी बेहोश से होने लगे। शरीर ज्योंही गिरने को था कि इतने में स्वामीजी पूर्ण मानसिक बल से सब शक्तियों को केन्द्रित कर साहस से क्लेशों को जीतकर पार हो ही गये॥ 13॥

निस्सार्यांगात्कृत्स्नवस्त्राण्ययं स्रागंघ्रेरग्राज्जानुपर्यन्तभागम्।
संवेष्ट्यालं पट्टकैः शुष्ककण्ठस्तत्रातिष्ठत्प्रेक्षमाणस्सहायम्॥ 14॥

अपने शरीर पर से कुछ वस्त्रों को उतार कर पैरों की अँगुलियों से लेकर घुटनों तक लपेट लिया। वहीं सूखे कण्ठ से विकल होकर सहायता की प्रतीक्षा करने लगे॥ 14॥

श्रान्तः क्लान्तोऽशक्त एतुं नितान्तंक्षुत्क्षामांगोऽभीक्ष्णमुद्वीक्षमाणः।
अभ्यायन्तौ दृष्टवान् पर्वतीयौ दिष्टया दूरात्कष्टसिन्धौ निमग्नः॥ 15॥

थके, मांदे, भूख से व्याकुल, चलने में एकदम असमर्थ, कष्ट सागर में निमग्न स्वामीजी बार–बार इधर–उधर देख रहे थे कि भाग्यवशात् दो पहाड़ियों को दूर से आते देखा॥ 15॥

श्यामश्योमैर्भीममेघैस्समन्तात् संकीर्णायां दर्शरात्रौ यथा ना।
सिन्धौ मज्जंजीवनाशाविहीनः पोतं पश्येत्संसरन्तं समक्षम्॥ 16॥

जैसे काले–काले भयंकर बादलों से घिरी अमावस्या की रात में समुद्र में डूबता हुआ, जीवन से निराश हुआ मनुष्य सामने से आते हुए जहाज को देखता हो॥ 16॥

आगम्यामू साधुहंसस्य पार्श्वं श्रद्धानम्रौ वीक्ष्य कष्टामवस्थाम्।
सदमात्मीयं प्रार्थयेतां प्रयातुं विद्धांघ्रित्वाद्यातु ताभ्यां कथं तु॥ 17॥

वे दोनों पहाड़ी परमहंसजी के पास आये, श्रद्धा से प्रणाम किया और इनकी दुःखजनक अवस्था को देखकर अपने घर पर चलने की प्रार्थना की। किन्तु घायल पैरों से स्वामीजी उनके साथ कैसे जा सकते थे॥ 17॥

क्लेशोदन्तं तं निशम्यार्द्रचित्तौ सत्पत्तीर्थं नेतुमात्तप्रतिज्ञौ।
वारं वारं सानुरोधं मुनीन्द्रं स्वातिथ्यार्थं प्रोचतुर्भद्रकामौ॥ 18॥

स्वामीजी की क्लेशजनक बातें सुनकर वे दोनों द्रवितचित्त होकर इन्हें सत्पत् तीर्थ ले जाने के लिये कटिबद्ध हो गये। स्वामीजी के शुभेच्छु पहाड़ियों ने बार–बार आग्रहपूर्वक अपने आतिथ्य–स्वीकार के लिये उनसे प्रार्थना की॥ 18॥

तां स्वीकर्त्तुं प्रार्थनामक्षमोऽयं नैवेत्युक्त्वा मौनमस्थान्मनस्वी।
खिन्नात्मानौ जग्मतुस्तौ यथेष्टं के निर्बन्धुं मुक्तहंसं समर्थाः॥ 19॥

मनस्वी स्वामीजी उनकी प्रार्थना स्वीकार करने में असमर्थ थे। अतः 'न आ सकूँगा' ऐसा कहकर स्वामीजी चुप हो गये। वे दोनों खिन्न होकर यथेष्ट स्थान को चलते बने। भला! मुक्त हंस को बाँधने में कौन समर्थ हो सकता है॥ 19॥

www.thearyasamaj.org

पंचत्वं किं यामि शैले हिमानीपूर्णप्रान्ते क्षुत्तृडार्त्तो हताशः।
नैवाकाण्डे युक्तरूपा मुमूर्षा तत्त्वालोचैनर्जीवनान्तो वरीयान्॥ 20॥

हिमाच्छादित इस प्रदेश में भूख और प्यास से व्याकुल क्या में मर जाऊँ। असमय में ही मर जाने की इच्छा अच्छी नहीं है। तत्व की आलोचना करते-करते ही जीवन का अन्त होना अच्छा है॥ 20॥

इत्यालोच्य प्राप्तविश्रामसुस्थः शान्तात्मायं दिव्यशक्तिप्रसन्नः।
प्रस्थायागाद् वासुधाराख्यतीर्थे स्थित्वा भूयो बद्रिकाधाम नक्तम्॥ 21॥

शान्तात्मा दिव्यदयानन्द इस प्रकार विचार करने के बाद थोड़ी विश्रान्ति मिलने से कुछ स्वस्थ हुए, और उठ खड़े हुए। वे चलते हुए वासुधारा नामक तीर्थ में आ गये और यहाँ से इसी रात में बद्रीनाथ आ गये॥ 21॥

मृत्योरास्यान्नूनमद्यागतोऽयं मृत्योर्जेता ब्रह्मचारी प्रसिद्धः।
दिव्यं मार्गं तं यियासोर्महर्षेर्मन्ये जाताऽमुष्य दिव्या परीक्षा॥ 22॥

ब्रह्मचारी मृत्यु को जीतने वाला होता है, यह बात प्रसिद्ध है। स्वामीजी सचमुच आज मृत्यु-मुख से वापिस आ गये थे। मानों दिव्य मार्ग के पथिक इस महर्षि की आज दिव्य परीक्षा हो गई॥ 22॥

आयातं श्रीरावलस्सोऽन्वयुंक्त कागा धीमन् कृतुम्रघम्रं त्वमद्य।
श्रान्तः क्लान्तो दृश्यसे यन्नितान्तं तस्मै सर्वं वृत्तमाख्यत्तदायम्॥ 23॥

रावलजी ने स्वामीजी के आने पर उनसे पूछा कि-हे महात्मन्, आप आज दिन भर कहाँ गये थे? आज आप एकदम थके मांदे लगते हैं। तब स्वामीजी ने सब बातें कह सुनाईं॥ 23॥

श्रुत्वाश्चर्यं प्राप्तवान् सज्जनोऽसौ प्रादादस्मै भोजनं सोऽपि जग्गध्वा।
रात्रौ सुप्तो गाढमानन्दतस्तं प्रातर्बुद्धः प्रास्थितामंत्र्य मंत्री॥ 24॥

स्वामी जी की कहानी सुनकर इस सज्जन को आश्चर्य हुआ और उनको तुरन्त ही भोजन ला दिया। स्वामी जी भी खाक रात में आनन्द पूर्वक गाढ़ निद्रा में सो गये; प्रातःकाल जागने पर इनसे आज्ञा लेकर चल पड़े॥ 24॥

गच्छन् रामाख्यं पुरं सायमेषप्राप्ते साधोराश्रमे न्युष्य पुण्ये।
तत्त्वज्ञानालापहृष्टान्तरंगः संकल्पान् स्वान् स्थैर्यभाजः प्रचक्रे॥ 25॥

रामपुर को जाते हुए स्वामीजी रात को एक साधु के आश्रम में ठहर गये। उनकी आध्यात्मिक-चर्चा से संतुष्ट हो गये और अपने संकल्पों को दृढ़ कर लिया॥ 25॥

अन्येद्युर्द्राक् स्नानसंध्यानिवृत्तः पूतात्मासौ संचचालात्मदृष्टिः।
नानाशैलारण्यमुल्लङ्घ्य चिल्काघट्टं रामं पत्तनं संप्रपेदे॥ 26॥

आत्मदर्शी पवित्रात्मा दयानन्द दूसरे दिन सवेरे जल्दी ही स्नान संध्या से निवृत्त होकर चल पड़े और अनेक जंगलों, पहाड़ों तथा चिलका घाट को लांघते हुए रामपुर आ पहुँचे॥ 26॥

-(शेष अगले अंक में)

www.thearyasamaj.org

योगेश्वर कृष्ण

पुत्र–वध का बदला

लेखकः पं. चमूपति

अभिमन्यु की वीरता के वृत्तान्त में हमने कृष्ण और अर्जुन के संशप्तक–गण से भिड़े रहने की वार्ता की ओर यथोचित ध्यान नहीं दिया। श्री कृष्ण की जीवनी में अभिमन्यु के वध ने इतना स्थान इसलिए ले लिया है कि युद्ध का शेष भाग मानो इस क्रूर हत्या के रंग में रँगा हुआ है। अभिमन्यु सात्वती–पुत्र था। उसका कृष्ण के वंश से उतना ही सम्बन्ध था जितना अपने पिता अर्जुन के वंश से। श्री कृष्ण युद्ध में निश्शस्त्र थे सही, परन्तु–समराभिनय के मुख्य नायक अर्जुन के सारथि होने से, और इससे भी बढ़कर युधिष्ठिर के साम्राज्य के कर्णधार–एक मात्र मंत्री–होने से, युद्ध की लीला के सूत्रधार वही थे। महाभारत का युद्ध श्री कृष्ण की जीवनी की मुख्य घटना है। इसी पर इनके जीवन के लक्ष्य की सिद्धि या असिद्धि निर्भर है। तब तो, जो बाल–वध इस युद्ध की प्रवृत्तियों पर इतना गहरा प्रभाव डालता है कि उस वध के पश्चात् कोई–से दो वीर लड़ें, अभिमन्यु का शुभनाम उनकी लड़खड़ाती जीभ पर आए बिना रह ही नहीं सकता, उसका सम्बन्ध श्री कृष्ण के जीवन से कैसे न होगा?

अभिमन्यु की हत्या के पूर्व दिन भी अर्जुन संशप्तकगण से लड़ने गया था। श्री कृष्ण ने अपनी सारथि– विद्या के और अर्जुन ने अपनी धनुर्विद्या के हुनर खूब दिखाए। अभिमन्यु के रथ और कमान के घुमाओं का वर्णन करते हुए हम उसके अपने और उसके सारथि के कौशल की प्रशंसा कर ही चुके हैं। वह लीला शिष्य की थी और यहाँ साक्षात् एक गुरु ही का नहीं, दो गुरुओं–एक गुरु और एक गुरुओं के भी गुरु–उस समय के दो युद्ध–विद्या के सर्वोपरि उस्तादों का–अपना हस्त–लाघव है। कृष्ण ने रथ को वह चक्कर दिये और अर्जुन के कमान को इस फुरती से उठाया, चलाया, और घुमाया कि संशप्तकों की सेना ने चारों दिशाओं में अर्जुन ही अर्जुन देखे।

उस रोज यह युद्ध दिन के कुछ हिस्से आ रहा था। शेष समय अर्जुन ने प्राग्ज्योतिष (असम) के राजा भगदत्त से लड़कर उसे मार गिराया था। दूसरे दिन संशप्तकगण का झमेला सारा दिन रहा। सायंकाल उनकी सेनाओं का संहार करके लौटने लगे तो अर्जुन ने कहा–''मेरा हृदय धड़क रहा है; मुझसे बोला नहीं जाता, सारे शरीर में सनसनी–सी मालूम हो रही है। अवश्य कोई अनिष्ट हुआ है।'' श्री कृष्ण ने उत्तर दिया–''युधिष्ठिर का साम्राज्य फिर से स्थापित होना निश्चित है। इस बड़े इष्ट की सिद्धि में छोटे–मोटे अनिष्ट हो भी जाएँ तो उनकी बहुत परवाह न करनी चाहिए।''

www.thearyasamaj.org

संध्या का समय हो चुका था। दोनों वीरों ने वहीं ईश्वर की आराधना की और इस नित्य कर्म से निवृत्त हो अपनी छावनी की ओर लौटे। वहाँ पहुँचते ही यह अशुभ समाचार मिला कि अभिमन्यु अब इस संसार में नहीं रहा। अर्जुन के हृदय पर मानो बिजली-सी गिरी। जब उसे बताया गया कि अभिमन्यु अकेला निःशस्त्र छः महारथियों से घिर गया था, तो वह अपने शोकातुर हृदय को थाम न सका-''हाय! मेरे मरते लाल ने मुझे पुकारा होगा! पिता की ओर से उत्तर न पाकर जनक की निष्ठुरता का गहरा घाव मर रहे पुत्र की छाती में पैठ ही तो गया होगा! नहीं, वह वीर था, वह मरते हुए रो नहीं सकता। पाण्डवदल उसकी सहायता को क्यों नहीं गया? जयद्रथ ने नाका बन्द कर रखा था? तो फिर लो! यदि कल सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ का वध न कर लूँ तो स्वयं जलती आग में प्रवेश कर जाऊँगा। हाँ! यदि जयद्रथ युद्ध से हट जाए या हमारी शरण में आ जाए तो उसका बचाव हो सकता है।'' अर्जुन ने पुत्र-वध के शोक का बुखार इस घोर प्रतिज्ञा के रूप में निकाला।

उधर अन्तःपुर में सुभद्रा का हाल अत्यन्त बेहाल हो रहा था। श्री कृष्ण उसको सान्त्वना देने गए तो वह फूट-फूटकर रोई। कृष्ण ने उसे दिलासा दिया। कहा-''जो गति अभिमन्यु की हुई है, उसके लिए तो हम सब जन्मकाल से तरसते हैं। ऐसे वीर की माता होकर तू विलाप कर रही है? तेरे पिता वीर! तेरे भाई-बन्धु सब वीर! सारी ससुराल वीरों की! और फिर यह भीरुओं का-सा विलाप? अभिमन्यु के वध का बदला जयद्रथ के वध से लिया जाएगा। अर्जुन प्रतिज्ञा कर चुका है और वह पूरी होकर रहेगी। अरी! देख तो, वह उत्तरा रो रही है। तू उसे दिलासा देगी या स्वयं रोएगी?'' दो कुलों की इकट्ठी शपथ में जादू था। बदले की बात में जादू था। उत्तरा की अनाथता में जादू था। वासुदेव की भगिनी, अर्जुन की पत्नी सुभद्रा शोक छोड़ झट आशीर्वाद देने लगी-''बेटा! तेरी वह गति हो जो यज्ञ करनेवाले दानशील आत्मवित् ब्राह्मणों की होती है।-जो यशस्वी ब्रह्मचारियों, कठोरव्रती मुनियों, एकपत्नीव्रत गृहस्थों की होती है।'' जो सुभद्रा अभी ममता की मारी, मोह की मूर्ति, अज्ञान-सागर में डूबी, शोकाश्रुओं का पुंज-सी बन रही थी, श्री कृष्ण के नीतियुक्त उपदेश से, जिसमें कुल के गर्व का, क्षात्र-धर्म का और साथ-ही-साथ अधम बदले की वृत्ति का भी पुट दिया गया था, एक ही क्षण में पुण्य आशीषों की पुतली, आदर्श पुत्रवत्सलता की प्रतिमा, सच्ची वीर-जाया, वीर-माता बन गई। वेदना और आशीष, मोह और भक्ति, ये भाव हैं तो परस्परविरोधी ही, परन्तु मानव-मानस का चमत्कार परस्पर-विरोधों के इसी अद्भुत मेल में है। वेदना विरक्ति बन जाती है। शोक के अटूट स्रोत से झट शान्त-रस फूटने लगता है। मोह की मलिन वैतरणी के साथ-ही-साथ, नहीं, उसके झीने-झीने आँचल के नीचे ही-ज्ञान की पवित्र गंगा बह रही है। पुत्र-हीना सुभद्रा सहसा विरक्ता साध्वी हो गई। जिसे स्वयं सान्त्वना चाहिए थी, उत्तरा का हाल बुरा देख झट उसे धैर्य के उपदेश देने लगी। कृष्ण ने अनाथा उत्तरा की ओर संकेत कर उसके प्रति सुभद्रा की कर्त्तव्य-भावना को प्रेरित कर दिया। कर्तव्य ने मोह को मार दिया-नहीं, संभवतः केवल अन्तर्हित कर दिया।

कृष्ण इस घर के धन्धे से निवृत्त हो सोचने लगे-यह प्रतिज्ञा तो मानो बिना ओर-छोर का सागर है। इसके पार लगें तो क्योंकर? सर्वसाधारण के सामने खुली घोषणाओं के साथ यह भयंकर प्रतिज्ञा की

www.thearyasamaj.org

गई थी। गुप्तचरों ने इसका समाचार कौरवदल में पहुँचा दिया। कृष्ण के चर खबर लाए कि जयद्रथ ने तो यह भयंकर समाचार सुन युद्ध से भाग जाने का निश्चय कर ही लिया था, परन्तु द्रोण ने उसे यह कहकर ठहरा लिया कि कल एक जटिल व्यूह रचेंगे। उसके अन्त में जयद्रथ का स्थान होगा। अवधि एक ही दिन की तो है। कौरवसेना की समूची शक्ति गाण्डीव-धनुष से भी एक दिन के लिए तो जयद्रथ को बचा ही लेगी।

प्रतिज्ञा करने से पूर्व अर्जुन ने कृष्ण की सलाह ही ले ली होती! तब प्रतिज्ञा संभवतः इतनी भयंकर न रहती। पर, फिर उसका स्वरूप विस्फोटक का-धम से फूट उठनेवाले मसाले का-न रहता। उसके द्वारा पुत्र-वध का बुखार न निकल सकता। अर्जुन को सुलाकर और उसे यह विश्वास दिलाकर कि कल गाण्डीव के तीर होंगे और जयद्रथ का सिर होगा, श्री कृष्ण अपने कैम्प में चले गए। कुछ देर सोकर रात के बीच ही में उठ खड़े हुए और अपने-सारथि दारुक को बुलाकर कह दिया-''रथ तैयार कर लो! लड़ाई का सारा सामान सुसज्जित रखो! देखें, कल क्या पेश आती है!''

दूसरे दिन द्रोण ने एक जटिल व्यूह रचा। आगे का भाग सचक्र शकट का था। उसके पीछे सूचीपद्म था। सूचीपद्म के गर्भ में गूढ़ व्यूह था। इन सबकी समाप्ति पर सेनाओं से घिरा हुआ जयद्रथ खड़ा था। शकट के मुख पर द्रोण थे। पदम् के मुख पर कृतवर्मा। जलसन्ध, दुर्योधन, कर्ण आदि इनके सहायक थे।

अर्जुन की पहली मुठभेड़ दुःशासन से हुई। उसे सेनासहित परास्त कर द्रोण के पास पहुँचा। अर्जुन ने कहा-आप मेरे गुरु हैं, कृपया मुझे रास्ता दे दीजिये। उन्होंने नहीं माना। कुछ देर दोनों धनुर्विद्या के मनोहर जौहर दिखाते रहे। द्रोण ने अर्जुन और कृष्ण दोनों को घायल कर दिया, और कमान घुमा-घुमाकर उनके चारों ओर तीर ही तीर कर दिये। अर्जुन तीरों को रोकता रहा, स्वयं भी तीर चलाता रहा। परन्तु वह तो मानो गुरुदेव को उनका पढ़ाया पाठ सुनाना-मात्र था। इन शरों में अर्जुन हस्त-लाघव का तो प्रदर्शन करता था, परन्तु गुरु-चरणों को चोट नहीं पहुँचाता था। कृष्ण ने उसके इस लाड़-चाव के अंदाज को ताड़ लिया; कहा-''भाई! समय जाता है।'' अर्जुन ने गुरु के रथ की प्रदक्षिणा कर द्रोण के नाके से छुट्टी पाई। इस पर आगे चलकर दुर्योधन सटपटाया। कहने लगा-आचार्य ने अपने प्यारे शिष्य पर कृपा दिखाई है। परन्तु कर्ण ने उसे समझा दिया-''भाई! रास्ता तो वह बाहुओं के बल से ही ले सकता था। आचार्य ने अपना मान भी रख लिया और युद्ध का नियम निभाने को उससे दो हाथ भी कर लिये। इस पर क्रुद्ध काहे को होना?'' द्रोण पीछे से तीरों की वर्षा करता रहा, परन्तु इसका अर्जुन की प्रगति पर कोई असर न हुआ।

अब भोज और कृतवर्मा अर्जुन के सामने आए। इन दोनों को आन की आन में पार कर कम्बोज (अफगानिस्तान) के राजा सुदक्षिण और श्रुतायुध से भेंट हुई। कृतवर्मा को अर्जुन ने छोड़ दिया, परन्तु इन दोनों को मृत्यु का द्वार दिखा ही दिया। इनके पश्चात् श्रुतायु, अच्युतायु, दीर्घायु तथा नियतायु को मार गिराया। इन युद्धों में एक बार अर्जुन अच्युतायु के शूल से मूर्च्छित हो गया। कृष्ण ने उस समय रथ को भी

www.thearyasamaj.org

सँभाला, अर्जुन को भी। रथ के चलाने मात्र से शत्रुओं के वार खाली लौटाए। इस हल्ले में स्वयं श्री कृष्ण पर भी तीरों की वर्षा हो गई। आगे चलकर अम्बष्ठ ने इन पर गदा चलाई। अर्जुन ने इसका बदला चुकाने में देर न की। उस गदा को तीरों से छेद दिया और जब अम्बष्ठ ने एक और गदा उठाई तो क्षुरप्रों से, जो चपटे अग्रभाग के तीर होते हैं, गदा भी काट दी और अम्बष्ठ की भुजाएँ भी उड़ा दीं। एक और तीर से उसका सिर गर्दन से अलग कर दिया।

इसके पश्चात् दुर्योधन स्वयं लड़ने को बढ़ा। श्री कृष्ण ने कहा–''लो, अभी युद्ध का फैसला हो जायगा। सारे उपद्रवों का मूल यही दुष्ट है। अपने समस्त संकटों का स्मरण कर इस एक को गाण्डीव का ग्रास बनाओ। फिर कोई लड़नेवाला रहेगा ही नहीं।'' अर्जुन ने गाण्डीव का बहुतेरा जोर लगाया। तीर ठीक निशाने पर भी बैठे, परन्तु दुर्योधन पर आँच न आई। श्री कृष्ण हैरान हुए। अर्जुन ने कहा, ''आचार्य की कृपा है। उनसे कवच लाया है। वह इस समय मरेगा नहीं।'' तो भी उसके घोड़े मार डाले, चाप चीर दिया, सारथि और पार्ष्णि का घात कर दिया। शरीर का जो भाग कवच के बाहर था, उसे घायल कर दिया। दुर्योधन इस व्यथा में फिर सामने खड़ा न रह सका।

आज की लड़ाई में कल की–सी अवस्था न थी। अर्जुन ने जहाँ व्यूह का भेदन किया, वहाँ दूसरे योद्धाओं का भी व्यूह में प्रवेश हो गया। स्थान–स्थान पर संकुल युद्ध हो रहे थे। अर्जुन जिन वीरों को जीतकर आगे निकल जाता, वे पाण्डव–सेना के और महारथियों से उलझ जाते थे। इस प्रकार अर्जुन का भार हल्का हो जाता था, हाँ, इन महारथियों में इतना बल अथवा फुर्ती न थी, न इनके कृष्ण जैसे सारथि थे कि वे भी अर्जुन के साथ–साथ कौरव–दल को लाँघकर जयद्रथ तक पहुँच सकते।

ज्यों–ज्यों दिन ढलता गया, अर्जुन और उसके अनुयायी योद्धाओं के बीच का अन्तर बढ़ता गया; यहाँ तक कि पहले तो अर्जुन का रथ पाण्डव–सेना की दृष्टि से ओझल हुआ, फिर उसके तीरों, तथा ज्या की आवाज आनी भी बन्द हो गई। अर्जुन ने कई और विजयें प्राप्त कीं और श्री कृष्ण ने प्रसन्न होकर शंख बजाया। इसकी ध्वनि विशेष थी। युधिष्ठिर ने उसके सुनते ही समझा–अर्जुन की सम्भवतः मृत्यु हो गई है और कृष्ण स्वयं अपने दिवंगत सखा की प्रतिज्ञा पूरी करने में लग गए हैं। यह विचार आते ही उसकी छाती दहल गई। उसने सात्यकि से कहा–''अपने गुरु की खबर लाओ!'' सात्यकि ने लाख कहा–''उनका बाल बाँका करनेवाला कौरव–दल में कोई नहीं। फिर मैं तो उन्हीं के आदेश से आपकी रक्षा पर नियुक्त हूँ। मेरे पीछे आपको द्रोण राहु की तरह ग्रस लेगा।'' परन्तु युधिष्ठिर नहीं माना। कन्याओं द्वारा सात्यकि का अभिषेक कराया, और मंगल–कामनाओं के साथ अर्जुन का पता लेने को भेजा। सात्यकि चेला अर्जुन का ही था। उसी रास्ते से कौरव–दल में प्रविष्ट होता गया जिससे अर्जुन उससे पूर्व घुसा था। अन्य वीरों के साथ–साथ इसकी मगधराज जलसन्ध से मुठभेड़ हो गई। जलसन्ध ने इसकी बाईं भुजा छेद दी और तलवार के वार से कमान काट डाली। जलसन्ध हाथी पर सवार था। सात्यकि ने उसके हाथी को तो लहुलुहान कर ही दिया था, अब पैनी धार के दो तीरों से उसकी दोनों भुजाएँ, और फिर तीसरे तीर से उसका सिर शरीर से अलग कर दिया।

–(शेष अगले अंक में)

www.thearyasamaj.org

ज्ञान विज्ञान योग

लेखकः डॉ0 सोमदेव शास्त्री, मुम्बई

गुरु शिष्य संवादः– गीता में अर्जुन और श्रीकृष्ण के संवाद के द्वारा अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया गया है, ये दोनों ही **श्रोता और वक्ता, गुरु और शिष्य या भक्त और भगवान् का प्रतिनिधि बनकर** वार्तालाप के द्वारा जन सामान्य को विभिन्न विषयों की जानकारी दे रहे हैं। प्राचीन ग्रन्थों में इस प्रकार संवाद के द्वारा अनेक रहस्यों का वर्णन किया गया है, जैसे कठोपनिषद् में यम और नचिकेता के संवाद के रूप में आध्यात्मिक विषय का सुन्दर विवेचन किया गया है। गीता में अर्जुन और श्रीकृष्ण के संवाद के माध्यम से अनेक विषयों को स्पष्ट किया जा रहा है। सप्तम अध्याय के प्रारम्भ में ही श्रीकृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि हे पार्थ! मैं तुझे सारा विज्ञान सहित ज्ञान बतलाऊँगा, जिसे जान लेने के बाद इस लोक में जानने को फिर और कुछ भी शेष नहीं रहता है। अर्थात् ज्ञान विज्ञान की सम्पूर्ण जानकारी मैं तुम्हें प्रदान करूँगा और यदि उसको तुमने जान लिया तो फिर जानने के लिये कुछ भी शेष नहीं बचेगा। सभी मनुष्य ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में पूर्ण रूप से सफल नहीं होते हैं। सभी मनुष्यों की भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रवृत्ति होती है। इसलिये हजारों व्यक्तियों में कोई व्यक्ति **योग** के लिये प्रयत्न करता है और उन प्रयत्न करने वाले व्यक्तियों में कोई-कोई व्यक्ति ही तात्त्विक रूप से परमात्मा को जानने में सफल हो पाता है।

शरीर से जीवात्मा का और ब्रह्माण्ड से ब्रह्मः– हमारे शरीर में जीवात्मा है उसको व्यक्ति आंखों से नहीं देख सकता है उसको देखने या अनुभव करने का माध्यम शरीर है। शरीर में जीवात्मा के रहने पर हर प्रकार की क्रियाएं होती हैं जैसे आंख से देखते हैं, कान से सुनते हैं, हाथ से काम करते हैं आदि। इन शारीरिक क्रियाओं के द्वारा ही हम अनुभव करते हैं कि इसमें इन सबको करनेवाला कोई-जीवात्मा है। जब जीवात्मा शरीर में नहीं रहता तब ये क्रियाएं नहीं होती हैं। इस प्रकार शरीर जीवात्मा को देखने और न देखने का माध्यम है। सारा संसार ही ब्रह्म का शरीर है। संसार में विद्यमान सभी नियमों को देखकर परमेश्वर का बोध होता है। सारा जड़, चेतन जगत् उसकी व्यवस्था में चल रहा है। उसके अनुशासन का पालन कर रहा है। इस विषय में लिखा है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार इन आठ भागों में मेरा (प्राकृतिक) रूप विभक्त है। यह आठ प्रकार के भेदों वाला मेरा (परमात्मा का) अपर रूप है, जड़ रूप है, मेरे पररूप को भी जान लो जो अपर रूप से भिन्न (परमात्मा के अपर और पर रूप) है। जिस के द्वारा यह संसार धारण किया जाता है।

ब्रह्म का अपर और पर रूपः– संसार में जड़ और चेतन दो तत्त्व विद्यमान हैं। जड़ तत्त्वों में पृथ्वी जलादि पंच स्थूल महाभूत तथा मन-बुद्धि और अहंकार इन सबका मूल कारण प्रकृति है, प्रकृति के

www.thearyasamaj.org

इन्हीं आठ तत्त्वों के द्वारा चेतन जीवात्मा क्रियाशील रहता है। ये आठों तत्त्व परमेश्वर के अस्तित्व का बोध कराते हैं तथा चेतन जीवात्मा भी भिन्न-भिन्न शरीरों को अपने कर्मानुसार प्राप्त करता है। उसका भिन्न-भिन्न शरीरों को प्राप्त करना भी ईश्वर के अस्तित्व एवं उसकी न्याय व्यवस्था की जानकारी कराता है। यही परमेश्वर का अपर और पर रूप है। परमेश्वर का निजरूप इससे भी भिन्न है। जो इन सब में व्याप्त है जो इन सबके अन्दर है और ये सब जिसके अन्दर हैं परमेश्वर से बाहर या उससे दूर या अलग जड़ और चेतन जगत् नहीं है। इसी विषय में लिखा है कि हे धनंजय! संसार के सभी प्राणी इन दोनों अर्थात् जड़ प्रकृति और चेतन जीवात्मा से उत्पन्न होते हैं। परमात्मा ही इस जड़ और चेतन का संयोग बनाने और प्रलय करने वाला होता है। परमात्मा से परे अन्य कोई वस्तु नहीं है जो कुछ संसार में हैं वह सब परमेश्वर में उसी प्रकार पिरोया हुआ है जैसे धागे में मणियां पिरोई हुई हैं। अर्थात् सब कुछ उसी परमेश्वर में ओतप्रोत है। सभी पदार्थों में व्याप्त हैं और उन पदार्थों का अस्तित्व ही परमात्मा के कारण से हैं।

जड़ पदार्थों में गुणः- प्राकृतिक पदार्थों में जो तेज है शक्ति है वह सब परमात्मा की ही है, उसी का स्वरूप है। इस विषय में लिखा है कि जल में रस, सूर्य और चन्द्र में प्रभाकान्ति, वेदों में ओ३म् आकाश में शब्द, पुरुषों में पौरुष, पृथ्वी में सुगन्ध, अग्नि में तेज, प्राणियों में जीवन, बुद्धिमानों की बुद्धि और तपस्वियों का तेज, बलवानों में बल, मैं (परमात्मा) हूँ। मनुष्य में सात्त्विक-राजसिक और तामसिक भावनाएं जो प्रकट होती हैं ये सब केवल मुझ से ही प्रकट होती हैं। अर्थात् उन सबकी व्यवस्था करने वाला परमेश्वर ही है। इस प्रकार का विस्तृत वर्णन इस अध्याय के 8 से 12 श्लोकों में किया गया है।

अग्नि और वायु का अहंकारः- केन उपनिषद् में भी चर्चा आती है कि एक बार देवताओं ने असुरों पर विजय प्राप्त कर ली, उनको अहंकार हो गया कि हमने विजय प्राप्त की। उनके अहंकार को दूर करने के लिये परमात्मा **'यक्ष'** के रूप में उनके सामने प्रकट हुए। देवताओं ने अग्नि से कहा कि तुम पता लगाओ यह कौन है? अग्नि यक्ष के पास गया, यक्ष ने पूछा कि तुम कौन हो? **अग्नि** ने यक्ष से अपना परिचय **अहंकार भरे** शब्दों में दिया कि मैं क्षण भर में संसार को जलाकर भस्म करने वाला अग्नि देव हूँ। परमात्मा ने उसके अहंकार को दूर करने के लिये उस के जलानेवाले तेज को जो वस्तुतः परमात्मा का है, छीन लिया और उसके सामने एक घास का तिनका रखा और कहा कि तुम इस तिनके को जलाओ। अग्नि देवता ने सारा जोर लगा दिया किन्तु वह तिनका नहीं जल सका। इस पर अग्नि देवता को अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ, उसका अहंकार समाप्त हुआ और वह लज्जित होकर नीचा मुख किये देवताओं के पास वापस चला गया। इसी प्रकार **वायु** 'यक्ष' के पास आया। उसने भी अपने परिचय में अहंकार भरे शब्दों में कहा कि मैं क्षण भर में सारे संसार को उखाड़ सकता हूँ, हिला सकता हूँ, उड़ा सकता हूँ। परमात्मा ने उसके तेज को छीनकर उसके सामने भी घास का तिनका रखकर उसको उड़ाने के लिये कहा। वायु उस तिनके को नहीं उड़ा सका। इस प्रकार यक्ष के रूप में परमात्मा ने अग्नि, वायु आदि देवताओं को इस

www.thearyasamaj.org

कथानक के द्वारा यह संकेत दिया है कि जो तुम्हारे में **शक्ति** और **तेज** है वह तुम्हारा अपना नहीं है अपितु **ईश्वर** प्रदत्त है। इसलिये इस प्रकार अहंकार नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार यहां गीता में भी वर्णन है कि परमात्मा की शक्ति संसार के सभी पदार्थों में विद्यमान है।

आध्यात्मिक मार्ग में विघ्नः– परमात्मा को प्राप्त करने में भौतिक प्रलोभन या सांसारिक चमक दमक और आकर्षण विघ्न और बाधा उपस्थित करते हैं। जब व्यक्ति आध्यात्मिक पथ पर चलना प्रारम्भ करता है, तब भौतिक या सांसारिक विषयों का आकर्षण उस ओर जाने से रोकता है। इस विषय में ईशोपनिषद में लिखा है कि 'चमकीलेपात्र (बर्तन) ने सत्य का मुख ढक रखा है। अर्थात् सत्य के मार्ग, ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग में ये चमकीले वस्तुएं रूकावटें बनकर खड़ी हो जाती है। इसी प्रकार का वर्णन गीता में करते हुए लिखा है कि यह सारा संसार अर्थात् संसार के मनुष्य प्रकृति के सत्त्व, रज, तम इन गुणों को ही सब कुछ समझकर इनके द्वारा भ्रम में पड़ गये हैं और मुझे (परमात्मा को) नहीं पहचान रहे हैं। मैं (परमात्मा) इन तीनों गुणों (सत्त्व, रज और तम) से परे हूँ, अविनाशी हूँ। इस सांसारिक माया को पार करना बहुत कठिन है जो लोग परमेश्वर की शरण में आते हैं वे ही इस माया रूपी चकाचौंध को पार कर सकते हैं। जिन लोगों की बुद्धि को सांसारिक चमक दमक ने अपनी ओर खींच रखा है, भौतिक सुख सुविधाओं के प्रति जो लोग आकर्षित हैं, उन लोगों में आसुरी (राक्षसी) वृत्तियां जागृत हो जाती हैं, वे स्वार्थी हो जाते हैं ऐसे मूर्ख नराधम लोग मेरी (परमात्मा की) शरण में नहीं आ सकते हैं अर्थात् परमेश्वरर को नहीं प्राप्त कर सकते हैं।

परमात्मा के कौन भक्तः– परमात्मा की भक्ति कौन–कौन से व्यक्ति करते हैं इस विषय में लिखा है कि हे अर्जुन! चार प्रकार के लोग मेरी (परमात्मा की) भक्ति करते हैं। वे इस प्रकार हैं **आर्त** (दुःखी), **जिज्ञासु**, **अर्थार्थी** तथा **ज्ञानी**। सुख के समय परमात्मा का ध्यान मनुष्य को नहीं आता है। दुःख कष्ट और भयानक आपत्ति के समय मनुष्य परमात्मा को याद करता है। हिन्दी के किसी कवि ने भी कहा है–

दुःख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, तो दुःख काहे को होय।।

जो व्यक्ति किसी वस्तु की खोज कर रहा है। ज्ञान प्राप्त करने के लिये लगा हुआ है वह भी ज्ञान के भण्डार परमेश्वर को स्मरण करता है तथा अर्थार्थी अर्थात् प्रत्येक बात में अर्थलाभ, सांसारिक लाभ को देखनेवाला भगवान् की भक्ति करता है। धनलाभ की प्राप्ति के लिये भी मनुष्य परमात्मा की भक्ति करता है। ज्ञानी व्यक्ति जिसे सत्यासत्य–नित्यानित्य का ज्ञान हो चुका है जिसे यह ज्ञान हो जाता है कि आत्मा **नित्य** है शरीर **अनित्य** है हमेशा रहने वाला नहीं है, परमात्मा की उपासना से आत्मिक उन्नति होती है वही व्यक्ति परमात्मा का भक्त है।

सकाम और निष्काम भक्तिः– इस प्रकार ज्ञानपूर्वक परमात्मा की उपासना या भक्ति करने वाले ज्ञानी व्यक्ति की भक्ति सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि वह निष्काम भाव से भक्ति करता है। दुःखी, जिज्ञासु और

www.thearyasamaj.org

अर्थार्थी की भक्ति में कामना है वे भक्ति द्वारा कुछ प्राप्त करना चाहते हैं। उनकी भक्ति में स्वार्थ जुड़ा है इसलिये इनकी भक्ति से ज्ञानी की भक्ति 'निष्काम' है। अतः सर्वश्रेष्ठ है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक परमात्मा की उपासना करते हैं वे परमात्मा को प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं तथा जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक जिन-जिन शक्तियों को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करता है वे उनको प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं। किन्तु उनको जो फल प्राप्त होता है वह नाशवान् होता है।

साधारण बुद्धि के लोग परमात्मा के अव्यक्त निराकार रूप को नहीं जानते हैं। उस अव्यक्त, निराकाररूप को ही व्यक्त या साकार रूप में व्यक्त हुआ समझने लगते हैं। परमेश्वर निराकार सर्वव्यापक है अजन्मा तथा अव्यय है किन्तु उसका यह रूप प्रकृति ने ढक रखा है इसलिये साधारण बुद्धि के मनुष्य परमेश्वर के निज रूप को नहीं पहचान पाते हैं। क्योंकि परमेश्वर सर्वव्यापक है, सर्वत्र विद्यमान है इसलिये सभी प्राणियों के बारे में वह जानता है उनके कर्मों को भी जानता है, इसलिये उनको फल भी देता है। परमेश्वर वर्तमान, भूत, भविष्यत् सभी कालों में होने वाले प्राणियों के बारे में जानकारी रखता है। उसका ज्ञान तीनों कालों में एक सा है इसलिये उससे कोई नहीं बच सकता है। किन्तु उस परमेश्वर को पूर्ण रूप से कोई नहीं जान सकता है। जो उसको जानते हैं उनके पाप समाप्त हो जाते हैं, वे दृढ़ व्रत होकर भक्ति करते हैं, वे परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं। ❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती		महापुरुषों की पुण्यतिथि	
डॉ0 राजेन्द्रप्रसाद	3 दिसम्बर	संत ज्ञानेश्वर	1 दिसम्बर
खुदीराम बोस	3 दिसम्बर	अरविन्द घोष	5 दिसम्बर
राजगोपालचारी	10 दिसम्बर	डॉ0 बाबासाहेब अम्बेडकर	6 दिसम्बर
गुरू गोविन्दसिंह	22 दिसम्बर	पं. रामप्रसाद बिस्मिल	19 दिसम्बर
श्रीनिवास अयंगर	22 दिसम्बर	अश्फाक उल्ला खान	19 दिसम्बर
मदनमोहन मालवीय	22 दिसम्बर	रोशनसिंह	19 दिसम्बर
शहीद उधमसिंह	26 दिसम्बर	स्वामी श्रद्धानन्द	23 दिसम्बर
कन्हैयालाल मुंशी	30 दिसम्बर	सी राजगोपालचारी	25 दिसम्बर
		विक्रम साराभाई	30 दिसम्बर

झण्डा दिवस	7 दिसम्बर
विजय दिवस (भारत पाक युद्ध 1971)	16 दिसम्बर
गोआ मुक्ति दिवस	19 दिसम्बर
क्रिसमिसडे	25 दिसम्बर

www.thearyasamaj.org

गतांक से आगे–

आर्ष पाठविधि की उपयोगिता और प्रासंगिकता

लेखकः डॉ0 सुरेन्द्रकुमार आचार्य, अलियाबाद, मं. शामीरपेट, जिला–रंगारेड्डी (आं. प्र.)

आर्ष पाठविधि का वास्तविक एवं पूर्ण स्वरूप

वैदिक काल से परम्परागत और महर्षि दयानन्द द्वारा प्रस्तुत आर्ष–पाठविधि एक पूर्ण पाठ–विधि है। वह अत्यधिक व्यापक, गम्भीर, दूरदर्शितापूर्ण, जीवन के लिए उपयोगी, एवं छात्र–छात्राओं के लिए विकासोन्मुखी है। ऋषि के अनुयायियों ने ही उसे अपनी सीमित समझ से संकीर्ण समझ लिया है अथवा संकीर्ण बना दिया है। अधिकांश लोगों ने ऋषि द्वारा अपने ग्रन्थों में पठन–पाठन विधि के अन्तर्गत वर्णित मुख्य विषय 'आर्ष शास्त्रों' को ही सम्पूर्ण आर्ष पाठविधि मान लिया है। वस्तुतः ऐसा है नहीं। महर्षि के समग्र वचनों के संदर्भ में उनकी पाठविधि का स्वरूप समझना चाहिए। यहाँ उन वचनों को एकत्र संकलित कर उन पर विचार किया जाता है और महर्षि की पाठविधि के सम्पूर्ण पक्ष को प्रस्तुत किया जाता है–

(अ) <u>मुख्य आर्षग्रन्थः अनिवार्य विषय :–</u> महर्षि ने अपने ग्रन्थों में आर्षग्रन्थों के पठन–पाठन की एक रूपरेखा दी है। वह एक केन्द्रिय रूपरेखा है जो केवल मुख्य तथा अनिवार्य विषय की है, सहयोगी विषयों अथवा ग्रन्थों का उल्लेख उसमें नहीं है। महर्षि के निम्नलिखित उद्धरणों से यह ज्ञात होता है–

(क) ''चारों वेदो (विद्या–धर्मयुक्त ईश्वर प्रणीत संहिता मंत्रभाग) को निर्भ्रान्त, स्वतः प्रमाण मानता हूं। वे स्वयं प्रमाण रूप हैं कि जिनके प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं। जैसे सूर्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं, वैसे चारों वेद हैं। और चारों वेदों के ब्राह्मण, छः अङ्ग, छः उपाङ्ग, चार उपवेद और 1127 (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा, जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं, उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेदविरुद्ध वचन हैं, उनका अप्रमाण मानता हूँ।'' (स. प्र. स्वमन्त.)

(ख) ''क्योंकि मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेके पूर्वमीमांसा पर्यन्त अनुमान से तीन हजार ग्रन्थों के लगभग मानता हूँ।'' (भ्रा. नि. पृ. 2)

इस प्रकार महर्षि तीन हजार के लगभग ग्रन्थों को प्रमाणिक मानते हैं किन्तु उन्होंने उल्लेख कुछ प्रमुख और सम्प्रति उपलब्ध ग्रन्थों का ही किया है, वे अध्ययन क्रम से इस प्रकार हैं–

1. शिक्षा वेदांग के अन्तर्गत 'वर्णोच्चारण शिक्षा' (पाणिनि कृत)

www.thearyasamaj.org

2. व्याकरण के अन्तर्गत पाणिनिकृत अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गणपाठ, लिंगानुशासन, सर्वसुबन्त प्रकरण, पतंजलिकृत महाभाष्य।

3. निरुक्त वेदांग के अन्तर्गत यास्कमुनिकृत निघण्टु, निरुक्त। कात्यायन मुनिकृत कोश।

4. छन्द वेदांग के अन्तर्गत पिंगलकृत छन्दः शास्त्र।

5. ज्योतिष वेदांग के अन्तर्गत वसिष्ठ मुनिकृत ज्योतिष, सूर्यसिद्धान्त। गणित विद्यायुक्त भृगुसंहिता।

6. कल्प के अन्तर्गत आश्वलायन श्रौतसूत्र व गृह्यसूत्र, मानवकल्पसूत्र, पारस्कर व कात्यायन गृह्यसूत्र।

7. धर्मशास्त्र, काव्य एवं इतिहास के अन्तर्गत मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण, महाभारत, यास्कमुनिकृत काव्यालंकार सूत्र, विदुरनीति।

8. उपांग के अन्तर्गत सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, वेदान्त, मीमांसा ये छह दर्शन। दश उपनिषदें।

9. ब्राह्मणग्रन्थ–ऐतरेय, बह्वृच्, शतपथ, साम, गोपथ ब्राह्मण।

10. चार वेद–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद–अर्थसहित।

11. उपवेद– आयुर्वेद के अन्तर्गत पतंजलिकृत चरक, धन्वन्तरिकृत सुश्रुत, निघण्टु। धनुर्वेद के अन्तर्गत शुक्रनीति, अंगिरा तथा भारद्वाज कृत ग्रन्थ। गान्धर्ववेद के अन्तर्गत नारद संहिता आदि। अर्थवेद के अन्तर्गत विश्वकर्मा, वाराह, त्वष्टा, देवज्ञ, मय कृत संहिताएं।

12. इनके अतिरिक्त अनेक ऐसे भी ग्रन्थ हैं जिनका पठन–पाठन विधि में उल्लेख तो नहीं है, किन्तु महर्षि ने अपने ग्रन्थों में उनके प्रमाण उद्धृत किये हैं जैसे संहिताग्रन्थ, आरण्यक, श्वेताश्वतर उपनिषद्, मैत्रेयी उपनिषद् आदि।

स्पष्ट है कि शेष ग्रन्थ भी पठनीय हैं और उनका सहयोगी विषय अथवा स्वतंत्र रूप से पठन–पाठन किया जा सकता है। किन्तु इसमें एक कठिनाई यह है कि तीन हजार की तो उम्मीद ही छोड़िए, अभी तक 1127 शाखाग्रन्थों की भी सूची उपलब्ध नहीं हो पायी है। भविष्य में उपलब्ध होने वाले ग्रन्थों का निर्णय 'वेदानुकूलता' की कसौटी पर परख कर करना होगा। महर्षि हमारे सामने यह कसौटी छोड़ गये हैं।

(आ) **आर्ष–पाठविधि में अन्य लेखकों के पठनीय ग्रन्थः–** "जो–जो बात वेदार्थ से निकलती है, उन सबका प्रमाण करता हूँ। क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य है। और जो–जो ब्रह्माजी से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त महात्माओं के बनाये वेदार्थानुकूल ग्रन्थ हैं, उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूँ।" (ऋ.द.प. वि. भाग 1, पृ.154)

(क) "अथवा जिन्होंने उन सम्पूर्ण ग्रन्थों (वेद, वेदांग आदि) को पढ़के जो सत्य–सत्य वेद व्याख्यान किये हों, उनको देखके वेद का अर्थ यथावत् जान लेवें। (ऋ. भा. भू.प. पा. विषय)

www.thearyasamaj.org

(इ) विज्ञान, वाणिज्य, चिकित्सा, शिल्पकला आदि विविध विद्याओं का उल्लेखः–

(क) महर्षि ने अपने ग्रन्थों में, विशेषतः वेदभाष्य में अनगिनत स्थानों पर पृथ्वी से लेकर परमेश्वर तक के ज्ञान–विज्ञान, कला–कौशल को जानने पर बहुत बल दिया है। उसे सुख–सुविधा का मुख्य आधार माना है। जो ऋषि परमाणु से लेकर परमेश्वर पर्यन्त, पृथ्वी से लेकर आकाश पर्यन्त समस्त ब्रह्माण्ड के ज्ञान–विज्ञान को जानने की अनेकत्र प्रेरणा करता है और जो वेदों को सब सत्यविद्याओं का मूल पुस्तक मानता है, उस व्यक्ति की पाठविधि में कौनसी ऐसी सत्यविद्या है जो उसके अन्तर्गत न आती हो। ऐसी पाठविधि तो सार्वभौतिक और सार्वकालिक कहलायेगी। क्या वह कभी अनुपयोगी, अप्रासंगिक अथवा अव्यावहारिक हो सकती है? कदापि नहीं।

यद्यपि पृथ्वी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त तक में संसार का सारा ज्ञान–विज्ञान समाहित हो जाता है फिर भी उन्होंने अनेक विज्ञानों , शिल्पकलाओं एवं विद्याओं का नामोल्लेख नमूने के रूप में अपने ग्रन्थों में किया है और उनको सीखने की प्रेरणा दी है। वे हैं–

1 खगोलविद्या (लोकभ्रमण, आकर्षण, प्रकाशविद्या आदि), 2. भूगर्भविद्या, 3. भूगोल विद्या, 4. गणित विद्या, 5. पदार्थगुण विज्ञान (रसायन विज्ञान), 6. विमान विद्या (सौर, अग्नि–विद्युत् जल द्वारा), 7. नौविद्या, 8. तारविद्या, 9. धातु–विज्ञान, 10. यन्त्रनिर्माण कला, 11. हस्तशिल्प (नाना पदार्थों का निर्माण, कारीगिरी), 12. स्थापत्यकला, 13. चिकित्सा विज्ञान (चिकित्सा एवं शल्यक्रिया), 14. आग्नेयादि अस्त्रों का निर्माण एवं संचालन, 15. युद्धविद्या, 16. कृषिविज्ञान, 17. पशुपालन विद्या (चिकित्सा भी), 18. वनस्पति विज्ञान, 19. वाणिज्य शिक्षा (नाना प्रकार के व्यापारों का ज्ञान), 20. पाकविद्या, 21. सृष्टिविद्या, 22. योगविद्या, 23. संगीत विद्या (विषयासक्ति कारक आलाप को छोड़कर स्वरज्ञान, राग, रागिणी, समय, ताल, ग्राम, तान, मूर्छना, नृत्य, गीत, वादित्रवादन आदि), 24. धर्मशास्त्र, 25. अर्थशास्त्र, 26. इतिहास, 27. दर्शनशास्त्र, 28. राजनीतिशास्त्र, 29. काव्यशास्त्र, 30. व्याकरण आदि।

–(द्रष्टव्य है ऋषि के ग्रन्थों में 'पठन–पाठन विधि' प्रकरण तथा 'ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका')।

(ई) महर्षि की शिल्पकला–विद्यालय की योजनाः–

(क) महर्षि ने कला–कौशल सिखाने की एक योजना बनाई थी। उसके लिए जर्मनी के प्रो. जी वाईज, बैडन (जर्मनी) से पत्र–व्यवहार भी किया था। उस सज्जन ने कुछ युवकों को शिक्षा देने की स्वीकृति भी दे दी थी। कुछ कारणों से उन्हें भेजा नहीं गया। यहाँ महर्षि का स्वदेशप्रेम व दूरदर्शिता द्रष्टव्य है।

(ख) जिस प्रकार आजकल आई.टी.आई जैसे विद्यालय हैं, वैसे विद्यालय की अद्‌भुत योजना भी महर्षि के मस्तिष्क में थी। उन्होंने लिखा था–"यह अब स्पष्ट है कि बहुत–से पढ़े लिखे लोगों को भी नौकरी नहीं मिलती, या वे जीवन–निर्वाह का प्रबन्ध नहीं कर सकते। ऐसी अवस्था देखकर मैं एक कला–कौशल के स्कूल की आवश्यकता विचारता हूँ। प्रत्येक पुरुष को अपनी आय का 100वाँ भाग प्रस्तावित संस्था को

www.thearyasamaj.org

देना चाहिए।'' (ऋ. द. पत्र-विज्ञापन, भाग 1, पृ. 450)।

(उ) महर्षि की क्षात्रशाला खोलने की योजनाः-

महर्षि ने यह देखकर कि राजा और राजवंश के लोग सामान्य पाठशालाओं में अपने बच्चों को नहीं पढ़ायेंगे, अतः आर्षशास्त्रों के अध्ययन के साथ उनको राजनीति व सैन्य शिक्षा देने के लिए पृथक से 'क्षात्रशालाऐं खोलने की योजना भी बनाई थी और इसके लिए राजाओं को प्रेरित भी किया था, किन्तु यह योजना पूर्ण नहीं हो सकी। इससे महर्षि की विस्तृत और दूरदर्शितापूर्ण शिक्षापद्धति पर प्रकाश पड़ता है। कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं-

(क) ''जो राजकुमार-पाठशाला की बात हुई थी सो श्रीमदार्यकुलभास्करों (उदयपुराधीश) ने भी करना स्वीकार कर लिया है।'' (ऋ. द. प. वि. 2, 544, शाहपुराधीश को लिखा पत्र, 21 मार्च 1882)।

(ख) ''क्षात्रशाला का प्रारम्भ हो गया होगा। और विशेष समाचार हो सो लिखियेगा।'' (ऋ. द. प. वि. 2, 719, शाहपुराधीश को लिखा पत्र, 10 जून 1883)।

(ग) ''अग्निहोत्र का आरम्भ हो गया, सुन के अत्यन्त आनन्द हुआ। और क्षात्रशाला का आरम्भ होगा, सुनेंगे जब अत्यन्त आनन्द होगा।'' (ऋ. द. पत्र-विज्ञापन 2, 733, शाहपुराधीश को लिखा पत्र, 8-7-1883)।

(घ) ''और दो लाख रु. वहाँ के क्षत्रिय-सरदारों से लेकर क्षात्रशाला स्थापन शीघ्र कीजियेगा।'' (ऋ. द. पत्र-विज्ञापन 2/755, उदयपुराधीश को लिखा पत्र, अगस्त 1883)।

(ङ) ''और क्षात्रशाला का उद्योग निष्फल हुआ यह शोक की बात है।'' (ऋ. द. पत्र-विज्ञापन 2, 778, शाहपुराधीश को लिखा पत्र, 8-7-1883)।

(च) ''उपदेश-3 क्षात्रशाला'' (करनी) चाहिये। (ऋ. द. पत्र-विज्ञापन 2, 797, झालावाड़ के राजराणा को लिखा पत्र, अनुमानतः 1883 ई. में)।

-(शेष अगले अंक में)

निवेदन

''तपोभूमि मासिक पत्रिका के पाठकों से निवेदन है कि वे अपना बकाया वार्षिक शुल्क वर्ष 2013 का शीघ्र ही 'सत्य प्रकाशन' के पते पर तपोभूमि कार्यालय को भेजकर जमा करायें ताकि पत्रिका सुचारू रूप से आपको प्राप्त होती रहे॥

-व्यवस्थापक

www.thearyasamaj.org

गतांक से आगे–

धूर्त जन

रचयिताः ओमप्रकाशसिंह, सिकन्दराराऊ, जिला–हाथरस (उ0 प्र0) मोबा. 9411630343

(49)

किसी न्यायाधीश ने संविधान से किया काम,
हे धूर्तो! संविधान को ही बदल डाला है।
अपनी सत्ता भूख को सदा रखा सर्वश्रेष्ठ,
संविधान के मुँह पै लगाया गया ताला है।
संसोधनों की बाड़ को लगाया संविधान में,
स्वार्थ के लिये सदैव किया मुँह काला है।
जातियों बांट–बांट हिन्दू को बिन्दू किया,
तुम्हारे कर्मों से हिन्दू नष्ट होने वाला है।

(50)

आरक्षण का रोग संविधान ने पैदा किया,
उसका भी निदान किया था संविधान ने।
निश्चित वर्षों का समय उसको दिया गया,
ये रोग का निदान भी किया था विधान ने।
हो आवश्यक राष्ट्र को होवे तभी संसोधन,
संसोधन व्यवस्था बनायी प्रविधान ने।
धूर्तो! पर धूर्तता के लिये संशोधन किये,
उसका निदान नहीं किया हिन्दुस्तान ने।

(51)

यह सत्ता मिले कैसे, इसके लिये ही तुम,
संविधान के ऊपर भी विधान ला रहे।
मुस्लिम तुष्ट होवे, यही धर्म निरपेक्षता,
हे धूर्तो! सदा से तुम ऐसे गीत गा रहे।
करके तुष्टीकरण हिन्दुओं को बांट–बांट,
ऐसे ही कुकर्म कर सत्ता सुख पा रहे।

www.thearyasamaj.org

हिन्दू की मूर्खता से ही सदैव धूर्तो से तुम,
हिन्दू की ही जड़ें काट शासन में आ रहे।

(52)

हे धूर्तो! बताओ तुम, क्यों सत्ता सुख के लिये,
भारती–आँचल को चीर–चीर कर रहे?
जो भारत का नाश करें ऐसी वाहवाही को,
क्यों विचारे हिन्दू को पीर–पीर कर रहे?
सदियों से लुटा पिटा ये हिन्दू तो अभागा है,
क्यों इसकी आँखों को नीर–नीर कर रहे?
हिन्दू का शरीर मन पहले से घायल है,
क्यों फिर इसे तुम तीर–तीर कर रहे?

(53)

धूर्तो! तुम इस्लाम को कितना भी तुष्ट करो,
तो भी उसे तुम तुष्ट कर नहीं पाओगे।
कितना भी बदल दो विधान औ, संविधान,
यह तुष्टी करके भी तुम मात खाओगे।
कुरान हदीसों के इशारे पै चले इस्लाम,
तुम जैसे काफिर क्या उसे समझाओगे?
इन हिन्दुओं को तुम लुंज पुंज बना दोगे,
खुद भी मिटोगे और हिन्दू मिटवाओगे।

(54)

धूर्तो! बचोगे नहीं सुनो ये अन्तिम सत्य,
तुम चाहे धूर्तता के निरे जाल फेंक लो।
धर्म निरपेक्षता के झांसे न आये इस्लाम,
सत्य और अहिंसा की सारी चाल फेंक लो।
इस्लाम की हिंसा तुम्हें काट–काट फेंक देगी,
हे धूर्तो! झांसे के लिये सारा माल फेंक लो।
हिंसक खायेंगे मास–तोड़ेंगे तुम्हारी श्वांस,
भाईचारा सहिष्णुता सारे ख्याल फेंक लो।

–(शेष अगले अंक में)

www.thearyasamaj.org

वृहद विमान शास्त्र
शक्ति पंजर कीलफ यंत्र
वैदिक तकनीक का विद्युत मोटर
Electric Motor of Vedic Technology

लेखकः कृपालसिंह वर्मा, 253 शिवलोक, कंकरखेड़ा, मेरठ (उ0 प्र0) मोबा. 9927887788

किसी प्राचीन किले के खण्डहरों को देखकर ही उसकी भव्यता का आभास हो जाता है। सन् 1918 में पूज्य स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्रजक को राजकीय संस्कृत पुस्तकालय बड़ौदा से महर्षि भरद्वाज द्वारा सूत्र रूप में रचित "यन्त्र सर्वस्व" ग्रन्थ के वैमानिक प्रकरण के कुछ पन्नों की Transcript copy मिली जिसको स्वामी जी ने 'बृहद् विमानशास्त्र' का नाम दिया। इस पुस्तक का श्लोकबद्ध भाष्य यति बोधानन्द ने किया था। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद स्वामी जी ने 19-09-1958 ई0 को पूर्ण किया। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली ने इस पुस्तक को फरवरी 1959 ई0 को प्रकाशित किया।

वृहद् विमान शास्त्र के पेज 192-193 पर शक्ति पंजर कीलक यंत्र अर्थात् Electric Motar का वर्णन है। श्लोक संख्या 62 से 82 तक में मुख्य रूप से वर्णित है।

बाहु माप ऊंचा, बाहुमाप लम्बा द्रोणी हाण्डी की भांति पीठ (Base) का निर्माण शक्ति गर्भ लोहे (Magnetic Iron) से करें। पीठ (Base) के मूल, मध्य व अन्त में यथाक्रम अर्धचन्द्राकार मुख वाली कीलों को लगायें। इन कीलों के ऊपर ताम्बे की पट्टिका लगायें। जो Magnet का कार्य करेंगी।

दण्डछिद्रेषु सर्वत्र शलाकान् योजयेत् ततः।
सप्रमाणां लोकतन्त्रीं शलाकोपरि वेष्टयेत्।। 80।।

दण्ड (Middle port of the Rooter) के छिद्रों में श्लाका (Pipes) को नियुक्त करें तथा शलाकाओं से ऊपर तन्त्रिकाएं अर्थात् लोहे से तार लपेटें, जो Copper Coils का निर्माण करेंगी।

"तन्त्रीन् शलाकान् तच्छक्तिगर्भलोहेन् शास्त्रतः।"

तन्त्री शलाकाओं (Coils) में प्रवेश कर विद्युत शक्ति, शक्ति गर्भ लोहे (Magnetic Iron) के सम्पर्क से Machanical energy प्रदान करेगा। जैसा कि शास्त्रों में वर्णित है।

वैदिक तकनीक में Coils को Pipe के ऊपर Iron Wires को लपेटकर बनाया जाता था तथा Rooter के छिद्र स्थानों में उनको नियुक्त किया जाता था तथा Magnets को ताम्बे की पट्टिकाओं के रूप में Motar Body में नियुक्त किया जाता था।

www.thearyasamaj.org

The basic difference between the electric Motar of modern Science and the electric motor of vedic science is that, in modern science the coils are fixed in the body of the motor and the magnets are fixced in the rooter where as in vedic Technology the magnets were fixed in the body of the motor in the shape of cooper plates and pipe coils are fixed in the Rooter.

इसी प्रकार–

वर्तुलं पंजर भवेत् सुदृढ़य् अद्भुतम्।
तत्पन्जर ताम्र पट्टिका उपरि स्थापयेत् ततः॥ 8॥

उस गोल पन्जर (Roort) को ताम्र पट्टिकाओं के अन्दर मध्य में स्थापित करें।

विद्युत शक्ति पंजरस्य अधोभागे न्यसेत् क्रमात्।
पंजरस्थ शलाकानां तन्त्रीणामपि शास्त्रतः॥ 82॥

विद्युत शक्ति को क्रम से पंजर के अधो भाग में स्थापित करें। इस प्रकार विद्युत शक्ति पंजरस्थ तन्त्रीकाओं (Into the coils fixed in the rooter) में पहुंच जायेगी। जैसा कि शास्त्रों में वर्णित है।

विद्युत सम चोदनार्थाय कीलकम् स्थापयेत् तथा।
विमानस्थ अंगयन्त्राणाम् द्वाविंशत्यांधिषु क्रमात्॥ 83॥

विमान के 32 अंगों में विद्युत प्रेरित करने के लिए क्रमश 32 कीलों (Switches) को शंकुओं (चौभे) से स्थापित करें। ❁❁❁

गीत

–महाकवि शंकर जी

पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं,
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से, हा? किसके तन मन रीते हैं।
पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं,
पूरे रिपु चेतन–कुरंग के, हरि वृक भालु बाघ चीते हैं।
पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं,
छूटें न इनसे पिण्ड हमारे, अगणित जन्म वृथा बीते हैं।
पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं,
शंकर वीर बलिष्ट वही है, जिसने ये प्रतिभट जीते हैं।

www.thearyasamaj.org

वेदों में पुनरुक्ति दोष नहीं

लेखकः पं. बिहारीलाल शास्त्री, काव्यतीर्थ

एक ही वेद में कई मंत्र बार-बार आये हैं। **"अश्वत्थे वो निषदनम्"** मंत्र यजु 12/79 में है और 35/4 में भी। यजु: साम और अथर्व में अधिकतर ऋग्वेद के ही मंत्र हैं। प्रश्न है यह पुनरुक्ति क्यों है?

उत्तर में निवेदन है कि वेदराशि ऋग् यजुः साम-पद्य, गद्य गीत 3 प्रकार की है, परन्तु समूह रुपेण एक ही है-**"एक एव पुरा वेदः"** अथर्व भी इन तीनों प्रकारों में आ जाता है। परन्तु व्यवहार, कर्मकांड में प्रकरण वश इन मंत्रों को दुहराया गया है। व्यावहारिक प्रकरण में ईश्वर ने वेदराशि को चार भागों में विभक्त किया है। जहां उस कार्य में आवश्यकता पड़ी वह मंत्र दुहराता गया है।

जैसे "अश्वत्थे वो निषदनम्" 12/79 में औषधियों के सम्बन्ध में आया तो 35/4 में जीव के सम्बन्ध में भी लगा हुआ। कहीं प्रकरण समावर्त्तन का, तो कहीं राजतिलक का। इन में कुछ विधियां एक सी भी आ जाती हैं। अतः उन मंत्रों को दुहराया गया है। लोक में भी व्याख्यान देते हुए एक ही पद को, शेर को कई बार भी बोलना पड़ता है। पुनरुक्ति वह होगी जिसका बिना प्रकरण अनावश्यक प्रयोग किया जाये। पुरुष सूक्त वागाम्भृणी सूक्त इतने आवश्यक हैं कि इन का ज्ञान सर्वसामान्य में फैलाया जाये अतः कोई एक ही वेद का अध्ययन करे तब भी इसका ज्ञान तो उसे होता जाये। गायत्री मंत्र भी तीनों (ऋ. य. सा.) में इसीलिये पढ़ा गया।

वह सबको जानना आवश्यक है। अथर्व में भी जो संहिता वा शाखा क्योंकि 'शन्नो देवी' से प्रारम्भ होती है। उससे प्रथम गायत्री उच्चारण का विधान है अतः श्री स्वामी जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखा है कि गायत्री मंत्र चारों वेदों में है। पुरुष सूक्त अथर्व में भी है। एक दो शब्द बदल कर। मंत्र संख्या भी ऋग् और अथर्व के पु0 सू0 में उतनी नहीं जितनी कि यजुर्वेद में है। भगवान् को बताना यह था कि इस प्रकार भी पाठ हो सकता है और इस प्रकार भी। **"सहस्रशीर्षा"** भी **"सहस्रबाहुः"** भी। यजुः में **"श्रीश्च ते लक्ष्मी च पत्न्या"** है। अथर्व में नहीं। क्योंकि वहां यज्ञ का प्रसंग था, यहां नहीं। अतः प्रसंग वशात्, कर्मकांड के कारण जहां पुनः पाठ है वह सार्थक है, अतः दोष नहीं। और उस उपदेश को अत्यावश्यक जानकर पुनः पुनः पाठ है यथा गायत्री मंत्र। **"तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु"** **"तं वो जम्भे दध्मः"** आदि अनेक स्थानों पर एक ही वाक्य बार-बार दोहराया गया है। **"राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि"** बार-बार कहा है। और अनेक स्थानों में ऐसा ही है। कारण यह गीत है और गीतों की टेक बार-बार कही जाती है। लौकिक गानों में भी देख लीजिये। जय जगदीश हरे, बार-बार कहा गया। इसी प्रकार **'कस्मै देवाय हविषा विधेम'** आदि टेकें हैं। निष्प्रयोजन, निरर्थक पुनः पाठ कहीं नहीं है अतः पुनरुक्ति दोष नहीं

-शेष पृष्ठ सं. 28 पर

www.thearyasamaj.org

मन का भार हल्का रखिये

लेखकः डॉ0 रामचरण महेन्द्र

कल न जाने क्या होगा? नौकरी मिलेगी या नहीं, परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे या अनुत्तीर्ण, लड़की के लिये योग्य वर कहाँ मिलेगा, मकान कब तक बनकर पूरा होगा, कहीं वर्षा न हो जाय, जो पकी फसल खराब हो जाय आदि बातों की निराशाजनक कल्पना द्वारा आप मन में घबराहट न पैदा किया करें। जो होना है, वह एक निश्चित क्रम से ही होगा, तो फिर घबराने, व्यर्थ विलाप करने अथवा भविष्य की चिन्ता में पड़े रहने से क्या लाभ? अवांछित कल्पनाऐं करेंगे तो आपका जीवन अस्त–व्यस्त होगा और व्यर्थ की कठिनाई से आप अपने को पीड़ित अनुभव करते रहेंगे।

समय पर कार्य प्रायः सभी के पूरे हो जाते हैं, इसलिए प्रयास तो जारी रखें, पर घबराहट पैदा कर काम को बोझीला न बनायें। आपका मन भार–मुक्त रहेगा, तो काम अधिक रुचि और जागरूकता के साथ कर सकेंगे। यह स्थिति आपको प्रसन्नता भी देगी और सफलता भी।

घबराने वाले व्यक्ति फूहड़ माने जाते हैं, उनका कोई काम सही नहीं होता। पुस्तकें लिये बैठे हैं, पर फेल हो जाने की घबराहट सता रही है। फलतः पेज तो खुला है पर मन कहीं और जगह घूम रहा है। एक गलती आप से हो गई है, उसे छिपाने के चक्कर में आपका दिमाग सही नहीं है, कहीं गड्ढे में गिर जाते हैं, कहीं बर्तनों से टकरा कर पांव फोड़ लेते हैं। सही काम के लिये मन में घबराहट का बोझ न डाला करिये। फल–कुफल की परवाह किये बिना स्वस्थ और पूरे मन से काम किया करिए।

अपना क्रम अपनी व्यवस्थायें ठीक रखिये तो आप पायेंगे कि घबराहट के सारे कारण निराधार हैं। आप अपना काम ठीक रखिये, आपको कोई नौकरी से नहीं निकालेगा। दुकान पर रोज बैठते हैं, तो खाने की क्या चिन्ता? दूसरों की बच्चियों की शादियाँ होती हैं, फिर आपकी बच्ची कुमारी थोड़े ही बैठी रहेगी। लड़का स्वस्थ और सदाचारी मिल जाय तो निर्धनता की घबराहट क्यों हो? आप अपनी व्यवस्था के साथ अपना दृष्टिकोण ठीक रखिये, आपकी सारी कठिनाइयाँ अपने आप हल होती रहेंगी।

घबड़ाना तो उन्हें चाहिए, जो हाथ पर हाथ रखे बैठे रहते हैं। कर्मशील व्यक्ति के लिये असफलता की आशंका नहीं होनी चाहिए।

कार्य करते हुए मानसिक असंतुलन रखना एक बड़ी कमजोरी है। इसी से सारी परेशानियाँ पैदा होती हैं। मन का झुकाव कभी इस ओर, कभी उस ओर होगा तो आप कभी एक काम हाथ में लेंगे और वह पूरा नहीं हो पायेगा, दूसरे काम की ओर दौड़ेंगे। इस गड़बड़ी में आपका न पहला काम पूरा होगा, न दूसरा। सब अधूरा पड़ा रहेगा। आपका मानसिक असन्तुलन सब गड़बड़ करता रहेगा और आपकी परेशानियाँ भी बढ़ती जायेंगी।

www.thearyasamaj.org

विचार लड़खड़ा जाते हैं, तो दिनचर्या और कार्यक्रम भी गड़बड़ हो जाते हैं और उल्टे परिणाम निकलते हैं। सवारी पाने की जल्दी में पीछे सामान छूट जाता है। स्वागत की तैयारी में ध्यान ही नहीं रहता और खाना जल जाता है। स्त्रियाँ इसी झोंक में इतनी वेसुध हो जाती हैं कि चूल्हे या स्टोव की आग से उनके कपड़े जल जाते हैं या मकान में आग लग जाती है। प्रत्येक कार्य को एक व्यवस्था के साथ करने का नियम है। एक काम जब चल रहा है, तो दूसरी तरह के विचार को मस्तिष्क में स्थान मत दीजिये। एक बार में एक ही विचार और एक ही कार्य। हड़बड़ाइये नहीं अन्यथा आपका सारा खेल चौपट हो सकता है।

जीवन में उदासी, खिन्नता एवं अप्रसन्नता के वास्तविक कारण बहुत कम ही होते हैं, अधिकांश कारण घबराहट से उत्पन्न भय ही होता है। मनुष्य नहीं जानता कि वह इससे अपनी शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का कितना बड़ा भाग व्यर्थ गंवाता रहता है? जिन्होंने जीवन में बड़ी सफलतायें पाई हैं, उन सबके जीवन बड़े सुचारू, क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित रहे हैं। जिनके जीवन में विशृंखलता होती है, उनके पास सदैव "समय कम होने" की शिकायत बनी रहती है फिर भी अन्त तक कुल मिलाकर एक दो काम ही कर पाते हैं, पर जिन लोगों ने विधि-व्यवस्था से, धैर्य से, चिन्ता-विमुक्त कार्य सँवारे, उन्होंने असंख्य कार्य किये। इतनी सफलतायें अर्जित कीं जो सामान्य व्यक्ति के लिये चमत्कार जैसी लग सकती हैं।

यह भी संभव है कि आपकी दुर्बलता पैतृक हो। आप यह अनुभव करते हों कि जिस परिवार में पैदा हुए हैं, वहाँ की परिस्थितयाँ उतनी अच्छी नहीं थीं। उस घर के लोग असफल, निराश, निर्धन, अनपढ़ या किसी अन्य बुराई से ग्रसित रहे हैं और उनका प्रभाव आपके संस्कारों पर भी पड़ा है। पारिवारिक जीवन का व्यक्ति के जीवन पर निःसन्देह बहुत प्रभाव होता है, किन्तु अपने मनोबल को ऊँचा उठाकर गई-गुजरी स्थिति में भी आशातीत सफलतायें प्राप्त की जा सकती हैं।

कदाचित आप में ऐसी कमजोरियां हों, जिनके कारण आपको घबड़ाहट आती हो। उन कमियों पर गम्भीरता-पूर्वक विचार कीजिये। उन्हें अपने माता-पिता, सहपाठियों, मित्रों से प्रकट कीजिये, उनसे सहायता लीजिये जिन्होंने छोटी अवस्थाओं से बढ़कर बड़े कार्य किये हों, उनके जीवन चरित्र पढ़िये। अपनी मानसिक कमजोरियों को दूर करने के लिये अपने सहृदय अभिभावकों और मित्रों के प्रति आपका जीवन एक खुली पुस्तक की तरह होना चाहिए, जिसका हर अच्छा बुरा अध्याय पाठक आसानी से समझ सकता हो आप अपनी कमजोरियों का हल औरों से पूछिये और उन्हें दूर करने के प्रयत्न किया कीजिये। अब तक आप आत्म-प्रशंसा के लिये अधीर रहते रहे, अब आप आत्मालोचन से प्रसन्न हुआ करिये, तो आपका जीवन प्रतिदिन निखरता हुआ चला जायगा। उसमें शक्ति, साहस और सफलता की कमी न रहेगी।

काम करते समय आपको जब भी निराशा, बेचैनी, बोझ या घबराहट लगा करे, उस समय अपने आत्म-विश्वास को जगाने का प्रयत्न किया कीजिये। आध्यात्मिक चिन्तन किया कीजिये। आप यह सोचा करिये कि आप भी दूसरों की तरह एक बलवान् आत्मा हैं, आपके पास शक्तियों का अभाव नहीं है। अभी तक उनका प्रयोग नहीं किया है, इसीलिए भय, संकोच या लज्जा आती है। पर अब आपने जान

www.thearyasamaj.org

लिया है कि आपकी भी सामर्थ्य कम नहीं है। आप निर्धन परिवार के सदस्य नहीं, वरन् परमात्मा के अमृत पुत्र हैं उसकी उत्कृष्ट शक्तियाँ आपमें निहित हैं फिर आपको घबराहट किसलिये होनी चाहिये?

जब भी कभी आपको कोई मानसिक भय, उलझन या निराशा उत्पन्न हो, आप कुछ देर के लिये एकान्त में चले जाया कीजिये। कल्पना में शुभ और पौरुषपूर्ण चित्र बनाया कीजिये। असफलता की बात मन से जितनी दूर भगा देंगे, उतनी ही आपके अन्दर रचनात्मक प्रवृत्तियाँ जागृत होंगी और आपका जीवन सुख-सुविधाओं से पूर्ण होता चलेगा।

प्रत्येक कार्य शान्ति और स्थिरता पूर्वक किया कीजिये। आप महान् आत्मा हैं, आपका जन्म किन्हीं महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हुआ है। बड़ी सफलता के लिये बड़ा साहस चाहिये। वह साहस आप में सोया है, उसे जागृत करना आपका काम है। आप इस लक्ष्य को समक्ष रखक शुभ कल्पनायें किया कीजिये और मन को भय, घबराहट तथा निराशा आदि के बोझ से मुक्त रखा कीजिये। आपका मन हल्का रहे तो उसमें से रचनात्मक स्रोत फूट पड़ें और आपको सब तरह की सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण करदे। इस वैदिक प्रार्थना में बड़ा बल है-

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधाजीवनोमनः।। -ऋ. 10।164।1

अर्थात्- "मन को अपवित्र करने वाले बुरे विचारों के बोझ मुझसे दूर रहें। मेरा चित्त कभी मलिन न हो। मेरा अन्तरात्मा निर्भय और मेरा मन शुभ विचारों वाला हो।"

❀❀❀

पृष्ठ सं. 25 का शेष-

माना जा सकता।

"आयुर्यज्ञेन कल्पताम्" यह मंत्र कुछ शब्दान्तर भेद से यजुः 9/218/29, 22/33 में आया है। कारण 9वें वाजपेय यज्ञ में आवश्यकता थी, 18वें कल्प यज्ञ में 22वें अश्वमेध में इसीलिये शब्द भेद है कि कहां कैसी और कितनी प्रार्थना की आवश्यकता वहां वे शब्द पठित हुए हैं।

न्याय दर्शन में-**"नानुवादपुनरुक्तयोर्विशेषः शब्दाभ्यासोपपतेः 2/1/25** अनुवाद और पुनरुक्त में कोई विशेषता नहीं है दोनों में ही शब्द को बार-बार बोला जाता है।

इसके उत्तर में अगले सूत्र में कहा है-

"शीघ्रतः गमनोपदेशवदभ्यासान्नाविशेष।"

बहुत शीघ्र जाने के लिये जल्दी-जल्दी यह दो बार बोलना विशेषता है। यथा शीघ्रं शीघ्रं गच्छ। जल्दी-जल्दी चलो अर्थात् बहुत शीघ्र। कहीं-कहीं इस प्रकरण में वही पीछे कहां उपदेश फिर आवश्यक होता है अतः पुनः पाठ आता है। जैसेकि गायत्री मंत्र का यजु0 में कई बार पाठ किया गया है।

❀❀❀

www.thearyasamaj.org

शान्ति बाहर नहीं–भीतर खोजनी पड़ेगी

शांति को खोजना हो तो उसे अपने भीतर ही खोजना चाहिए। बाहर तलाश करने में कितना ही श्रम किया जाय, कितना ही भटका जाय, वह मिलने वाली नहीं है। कस्तूरी वाला मृग उस दिव्य सुगन्ध को प्राप्त करने के लिए हर दिशा में भागता है पर हर छलाँग के बाद वह और आगे ही बढ़ जाती है जब तक वह न जाने कि इस गन्ध का स्रोत मेरी नाभि है तब तक उसे चैन नहीं पड़ता।

जन संकुल कोलाहल पूर्ण स्थानों में लोग अशान्ति अनुभव करते हैं और उसे छोड़ कर ऐसे एकान्त स्थान में जाना चाहते हैं जहां शान्ति मिल सके। एकान्त में जाकर रहने पर भी वह लक्ष्य पूरा नहीं होता क्योंकि वहाँ दूसरी तरह का कोलाहल शुरू हो जाता है नदी, पर्वत, वन भी अपवाद नहीं हैं वहाँ भी अशांति के लक्षण यथावत् विद्यमान मिलते हैं। अन्तर केवल तौर तरीकों का पड़ता है।

ध्वनि केवल शहर नगरों में यातायात वाहनों का, कल कारखानों का मनुष्यों की भीड़ का रहता है। वन प्रदेश में नदियों की कर्कश ध्वनि विचित्र ही प्रकार की होती है। चट्टानों से टकराती हुई जल धारायें बेतरह दहाड़ती हैं और कानों के पर्दे विक्षुब्ध करती हैं। रात्रि को झींगुर झल्ली हिंस्र पशु अलग से चित्र–विचित्र बोलियाँ बोलते हैं। नगर में दुष्ट दुरात्मा चैन नहीं लेने देते हैं, वन में सर्प, बिच्छू, कांतर, कानखजूर, गोह, सेही से लेकर रीछ, व्याघ्र, चीते, तेंदुए प्राण लेने के लिए घूमते रहते हैं। वहाँ प्रकाश का चकाचौंध बुरा लगता है यहाँ घोर अन्धकार में डर लगता है। वहाँ एक प्रकार के अभाव थे यहाँ दूसरे प्रकार के। गुजारे के लिए वहाँ नौकरी दुकानदारी करनी पड़ती थी। यहाँ ईंधन शाकपात खाने को, बाँस फूस झोपड़ी को तलाश करने पड़ते हैं। जल पात्र लिए एक झरने से दूसरे झरने तक फिरना पड़ता है। सारा दिन यहां भी पेट और शरीर के धन्धे में ही बीत जाता है।

पाप और बुराइयाँ इस वन प्रदेश में भी कम कहाँ है। दुष्ट बगुले दिन भर मछलियाँ खाते हैं। अजगर मेढ़कों को जिन्दा नहीं रहने देते, चिड़ियां कीट पतंगे की जान लेती रहती हैं। बाघ चीतों से बचने के लिये हिरन खरगोश शरण ताकते फिरते हैं। हिंसा और पाप से यह प्रदेश भी अछूता नहीं है। यदि यहां शांति होती तो वनवासी बार–बार नमक, शक्कर, तेल, दियासलाई, कपड़े, जूते खरीदने हाटबजार को क्यों भागते? शहर की दृष्टि से वन में शांति है। वनवासी को शहर सुन्दर लगते हैं। जो जिसके लिए प्राप्य है वही उसके लिए सुन्दर कैसे है यह विचित्र बिडम्बना है, गृहस्थ को साधु सुखी दीखता है और साधु को गृहस्थ लोग आनन्द से रहते दीखते हैं। कार्य संलग्न सोचता है विश्राम में आनन्द है। बैठा ठाला उस स्थिति से ऊब जाता है और काम न करके अपनी शक्तियों के कुंठित होने का खतरा देखता है। निःसंतानों को पुत्र–पौत्रों वाले भाग्यवान लगते हैं और सन्तान वाले सोचते हैं कि नरक से बचे हुए सन्तान हीन ही सुखी हैं।

वस्तुतः स्थान और परिस्थितियों के बदलने से शान्ति का लक्ष्य प्राप्त नहीं होता जो वस्तु जहां है ही नहीं वह वहाँ मिलेगी कैसे? शांति न एकान्त में है न जन संकुल में। और वह दोनों ही जगह है भीतर छिपी हुई शांति को खोज निकाला जाय तो उसके प्रकाश में हर जगह शांति दिखाई देगी और अन्तर में अशांति जल रही हो तो जहां भी जाया जाय तो वहाँ विग्रह, उपद्रव दिखाई देगा।

निवास या वेश परिवर्तन इसलिए नहीं करना चाहिए कि ऐसा करने से शांति मिल सकेगी। साधु और गृहस्थ–नगर निवासी और वनवासी समान रूप से खिन्न उद्विग्न रहते हैं। जब तक अन्तर अशान्त है तब तक बेचैनी के अतिरिक्त और कुछ कहीं भी नहीं मिलेगा पर जब अन्तःकरण में सदाशयता भर जाने से अन्तरात्मा का समाधान हो जाता है तो जहां भी रहें अखण्ड शान्ति का अनुभव होगा। ❁❁❁

www.thearyasamaj.org

रानी झाँसी और डाकू सागरसिंह

लेखकः चन्द्रशेखर

सन् 1857 में विंध्यखण्ड में विप्लव के बाद आसपास के इलाकों पर विप्लवकारियों का अधिकार हो गया था। अंग्रेजों के भय से जो डकैत लुके-छिपे रहते थे वे भी मौका देखकर सिर उठाने लगे। इन डकैतों में सबसे ज्यादा आतंक डाकू सागरसिंह ने मचा रखा था। अंग्रेजी सेना ने इसे पकड़ने की जी-तोड़ कोशिश की थी, लेकिन वह हाथ नहीं आया। सागरसिंह अधिकतर डाके बरुआसागर क्षेत्र में डालता था। बरुआसागर झाँसी रियासत का अंग था।

विप्लव के बाद झाँसी का शासन-सूत्र महारानी लक्ष्मीबाई ने संभाल रखा था। सागरसिंह के आंतक और लूटपाट के समाचार रानी को भी मिले थे। रानी ने तुरन्त सागरसिंह को जीवित या मृत पकड़ लाने का कर्नल खुदाबख्श को आदेश दे दिया। कर्नल खुदाबख्श अपने सिपाहियों की एक टुकड़ी लेकर झाँसी से बरुआसागर की ओर रवाना हो गया। सागरसिंह का घर बरुआसागर से दस मील दूर रावली ग्राम में था।

दूसरे दिन खुदाबख्श ने रावली की ओर कूच किया। सागरसिंह की हवेली गाँव में एक ऊँचे स्थान पर थी। वह खाने के बाद झपकी ले रहा था कि खुदाबख्श के दल ने हवेली को चारों ओर से घेर लिया।

हवेली के अन्दर सागरसिंह और उसके आदमी इस छापे का मुकाबला करने के लिए तैयार हो गये। साथ ही उन्होंने हवेली से गोलियों की बौछार शुरू कर दी। खुदाबख्श के कई सिपाही घायल हो गये। उसने तुरन्त हवेली पर चढ़ जाने की आज्ञा दी। स्वयं आगे हो गया। जब तक सागरसिंह फिर बन्दूकों को भरे तब तक खुदाबख्श हवेली पर चढ़ गया और कई सिपाही भी। सागरसिंह ने बन्दूक दाग दी, परन्तु खाली गयी।

बचने की कोई सूरत न देखकर सागरसिंह ने तलवार हाथ में ली और भयानक गति से उसे घुमाते हुए खुदाबख्श पर वार किया। तत्पश्चात् सिपाहियों को चीरता हुआ साफ निकल भागा। खुदाबख्श तलवार के वार से बेहोश हो गया।

इस असफलता का समाचार रानी झाँसी को मिला। रानी ने स्वयं इस दुस्साहसी डाकू का मुकाबला करने का निश्चय किया। रानी कर्नल रघुनाथसिंह सहित पच्चीस घुड़सवारों तथा अपनी कुछ सशस्त्र सहेलियों को साथ ले बरुआसागर की ओर चल दीं।

दोपहर तक रानी का दल बरुआसागर के किले में पहुँच गया घायल सिपाही और खुदाबख्श इसी किले में पड़े हुए थे। सिपाही अपनी रानी का स्नेह पाकर गद्गद् हो गये।

खुदाबख्श ने रानी को सागरसिंह से हुई झड़प का हाल बताते हुए कहा, "सरकार, गाँव वाले उसका पता नहीं देते। वे ही उसको भोजन और शरण देते हैं। मालूम हुआ है कि वह पड़ोस के जंगल में है।"

सन्ध्या तक बरुआसागर के मुखिया और पंच रानी के दर्शनार्थ आये। रानी ने उनकी कुशलक्षेम

www.thearyasamaj.org

पूछी और उन्हें डकैतों से निर्भय रहने का आश्वासन दिया। थानेदार ने रानी को सागरसिंह के विषय में सूचना दी वह बारह मील दूर खिसनी के जंगल में छिपा है।

रानी अपनी और बरुआसागर थाने की टुकडी को लेकर प्रात: चलीं। रास्ते में उन्होंने टुकड़ी के दो भाग कर दिये। एक को कर्नल रघुनाथसिंह के नेतृत्व में ग्राम की ओर रवाना किया और दूसरी टुकड़ी स्वयं लेकर चलीं।

कर्नल रघुनाथसिंह की टुकड़ी ने रावली ग्राम पहुँचकर सागरसिंह की हवेली पर घेरा डाल दिया। लेकिन वहाँ असफलता ही हाथ लगी। रानी ने तीन–चार सिपाहियों को सुराग लाने के लिए जंगल के अन्दर भेज दिया।

एक घण्टे के बाद सूचना मिली कि दो पहाड़ियों के बीच बनी एक झोपड़ी में वह खाना बना रहा है और डाकुओं के पास घोड़े और बन्दूकें भी हैं।

रानी ने जंगल में घुसकर दोनों पहाड़ियों की ऊँचाइयाँ सिपाहियों से घिरवा लीं और पहाड़ी के सिर पर भी कुछ सिपाही भेज दिये। स्वयं अपनी सशस्त्र सहेलियों के साथ घोड़ों पर ही पहाड़ियों की बगल में ठहर गयीं।

रानी ने आज्ञा दे रखी थी कि ऊपर वाले सिपाही धीरे–धीरे पहाड़ी के ढलान की ओर बढ़ें और जब डाकुओं के निकट आ जायें तब बन्दूक दागें। ऐसा ही किया गया। डाकू इस अचानक हमले से बुरी तरह घबरा गये। हड़बड़ाहट में खाना–पीना और साज–समान छोड़ घोड़ों पर बैठ पहाड़ी की बगल की ओर भागे। ऊपर से बन्दूकें चलीं, परन्तु कोई डाकू घायल नहीं हुआ।

डाकुओं ने सामने की ओर घोड़े मोड़ लिये। वहाँ तैनात सिपाहियों ने आड़ लेकर गोलियाँ चलायीं। गोलियों से डाकुओं के दो घोड़ों ने उसी समय दम तोड़ दिया। तीन–चार डाकू घायल हुए। डाकुओं ने जबाबी गोली चलायी, लेकिन रानी का दल आड़ में था इसलिए कोई नुकसान नहीं हुआ।

रानी के पास से एक डाकू घोड़े पर सवार सतर्क दृष्टि से इधर–उधर देखता आगे की ओर निकला। उसके हाथ में नंगी तलवार थी और गले में सोने की जंजीर। वस्त्र भी अच्छे थे। चेहरा रोबदार था। रानी को सागरसिंह का जो हुलिया बताया गया था वह इस सवार से मिलता था। रानी ने अपनी एक सहेली को इशारा किया और दोनों ने सरपट घोड़े दौड़ाये। सागरसिंह ने भी घोड़ा तेज किया। जब तक मार्ग कुछ–खाबड़ रहा, सागरसिंह बचता चला गया आगे कीचड़ वाली जमीन आने पर सागरसिंह का घोड़ा अटकने लगा। रानी और उनकी सहेली के पास काठियावाड़ी घोड़े थे, जो बहुत तेज थे। सागरसिंह को एक ओर से रानी ने दबाया, दूसरी ओर से सहेली ने।

रानी गले में हीरों का झिलमिलाता कण्ठा डाले थीं। आत्मरक्षा के लिए सागरसिंह ने रानी पर वार किया। तुरन्त सहेली ने घोड़ा आगे बढ़ा चपल गति से अपनी तलवार का वार किया। वार ओछा पड़ा, घोड़े की पीठ पर। खून का एक फव्वारा छूट पड़ा। उधर रानी ने घोड़े को फुरती से जरा रोका और वे कुछ इंच पीछे हुईं। सागरसिंह का बार रानी की तलवार पर पड़ा। रानी की तलवार कसी हुई थी। एक झंकार के साथ सागरसिंह की तलवार के दो टुकड़े हो गये। उसने भागने के लिए अपने घोड़े को एड़ लगायी, लेकिन उस की पीठ कट चुकी थी। सहेली ने सागरसिंह की गरदन पर तलवार का वार करना चाहा, किन्तु रानी

www.thearyasamaj.org

ने कहा, "जीवित पकड़ना है।"

रानी ने इस तरकीब से अपना घोड़ा सागरसिंह की बराबरी पर किया कि वह सट गया। रानी ने सागरसिंह की कमर पर अपना हाथ घेरा बनाकर डाला। सहेली समझ गयी कि क्या करना है। दूसरी ओर से उसने अपना हाथ सागरसिंह की कमर में लपेट लिया और झटका देकर घोड़े पर से उठा लिया। घोड़ा पीछे रह गया। सागरसिंह ने इस वज्रपाश में से निकलने की बहुत कोशिश की, परन्तु वह सफल नहीं हो सका। उसने अपने दाँतों को काम में लाने का प्रयत्न किया। रानी ने तुरन्त चेतावनी दी, "सावधान, यदि मुँह खोला तो तलवार से दो टुकड़े कर दूँगी।"

सागरसिंह को रानी और सहेली के बल की प्रतीति हो गयी। उसने अपने को भाग्य के हवाले कर दिया। थोड़ी देर पीछे से अन्य सैनिक भी आ गये। उन्होंने सागरसिंह को रस्सियों से बाँध दिया। कुछ डाकू भाग चुके थे, कुछ मौत के घाट उतार दिये गये थे।

सागरसिंह को सख्त पहरे में झाँसी लाया गया और बाद में रानी के सामने पेश किया गया। रानी ने पूछा, "तुम्हारा नाम?"

उसने उत्तर दिया, "कुँवर सागरसिंह, श्रीमंत सरकार।"

रानी ने कहा, "कुँवर होकर यह निकृष्ट आचार कैसा?"

सागरसिंह बोला, "सरकार, हमारा वंश सदा लड़ाइयों में भाग लेता रहा है। हमारे वंशजों ने महाराज ओरछा तथा महाराज छत्रसाल की सेवा में रहकर युद्ध किये। जब हमने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार नहीं की तो हमें तंग किया गया, इसी से हमने यह पेशा अपना लिया।"

रानी ने कहा, "जिन लोगों के घरों में तुमने इन दिनों डाके डाले हैं वे सब मेरी प्रजा हैं, अंग्रेजों की नहीं। डाके के लिए प्राणदण्ड मिलता है।"

सागरसिंह रानी के तेज से प्रभावित होकर बोला, "सरकार मुझको प्राणदण्ड गोली या तलवार से दिया जाये, फाँसी से नहीं। यदि फाँसी दी गयी तो मेरी जाति का अपमान होगा।"

रानी–यदि मैं यह कहूँ कि डाके बिल्कुल न डालो, तो इसके बदले में क्या चाहोगे?

सागरसिंह–सरकार के चरणों में नौकरी, जहाँ रहकर अपना पराक्रम दिखा सकूँ।

रानी ने दूरदर्शिता से काम लिया और सागरसिंह का अपराध क्षमा कर दिया। साथ ही उसके 'कुँवर' का पद भी कायम रखा।

सागरसिंह और उसके सैकड़ों साथी झाँसी की सेना में नियुक्त किये गये। सागरसिंह ने अपने वचन का प्राणपण से पालन किया। मार्च, 1859 को अंग्रेजी फौज की भयानक गोलावारी से झाँसी के किले की पश्चिमी दीवार ध्वस्त हो गयी। अंग्रेज सैनिक किले के अन्दर घुसने के लिये बढ़ रहे थे। इस मोर्चे की सुरक्षा का दायित्व सागरसिंह पर था।

उसने अपने साथियों को ललकारा–'आज बुन्देलों की नाक कटती है। जो मेरे साथ इन गोरों का सामना कर सके तुरन्त नीचे उतरे।' सागरसिंह और उसके साथी तलवार लेकर अंग्रेजी सेना पर पिल पड़े और शत्रुओं का दस्ता नष्ट कर दिया। वचन का धनी सागरसिंह भी इस झड़प में मारा गया। ❁❁❁

www.thearyasamaj.org

सफलता से दूर क्यों भागते हो?

–डॉ0 धीरेन्द्र मेहता

सफलता खुद एक प्रेरणा है, मनुष्य के सोये उत्साह एवं शक्ति को फिर से जगाने वाली चेतनता है। जैसे एक छोटी–सी चिनगारी अगाध–से–अगाध अंधकार को भी प्रकाशित कर देती है, वैसे ही सफलता का थोड़ा–सा अंश भी जिन्दगी को खोयी हुई राह के सामने ला खड़ा करता है। जापान के एक बाल–भवन के प्रवेश–द्वार पर एक तख्ती लगी है जिस पर लिखा हुआ है–"सोते–जागते, उठते–बैठते, चलते–फिरते सफलता का ही चिंतन करो, सफलता ही तुम्हारी परम उपास्य है। आँखों की ओट से सफलता को विलग न होने दो। मन से सदैव सफलता का मनन करो, तन से सदैव सफलता का आचरण करो। सफलता से बढ़कर कोई निधि नहीं, सफल आदमी से बढ़कर कोई सिद्ध नहीं।"

सफलता की महिमा में लिखे गये ये शब्द वस्तुतः बड़े अर्थमय हैं और श्रीमद्‌भागवत के इन शब्दों की व्याख्या करते प्रतीत होते हैं–"तेज का चिंतन करने वाला ही तेजस्वी बनता है।"

विख्यात मानस शास्त्री कैसन ने संसार के पांच हजार चुने हुए एवं सभी क्षेत्रों के सफल व्यक्तियों के रहन–सहन, खान–पान, एवं जीवनदृष्टियों का अध्ययन–विश्लेषण किया है और इस व्यापक अनुभव के आधार पर उन्होंने कुछ शोधक प्रश्न तैयार किये हैं। इन प्रश्नों के उत्तर स्पष्ट कर देते हैं कि आप सफलता प्राप्त करने की दिशा में कितने समर्थ एवं कितने असमर्थ हैं। नीचे हम इन प्रश्नों को दे रहे हैं। प्रश्नों के साथ उनके सही उत्तर भी दिये जा रहे हैं–

1– क्या आपको अपने व्यवसाय में दिलचस्पी महसूस होती है? उत्तर–हाँ।

2– क्या वेतन ही एकमात्र संतोष है, जो आपको आपके व्यवसाय से मिलता है? उत्तर–नहीं।

3– अधिक उत्पादन या काम की बेहतरी के लिए क्या आप कभी रचनात्मक सुझाव देते हैं? उत्तर– हाँ।

4– जब काम का सिलसिला कहीं से बिगड़ा लगने लगता है, तो क्या आप अपने सहकारियों को ही उसके लिए जिम्मेदार मानते हैं? उत्तर–नहीं।

5– जब आप स्वयं गलती करते हैं, तो क्या आप उस पर पछताने के बजाय, नये उत्साह से काम करना शुरू करते हैं? उत्तर–हाँ।

6– क्या आपको अपने आसपास के लोगों में दिलचस्पी है? उत्तर– हाँ।

7– क्या फुरसत के वक्त आप मनोरंजन के आदी हैं? उत्तर– हाँ।

8– जिस व्यवसाय में आप संलग्न हैं, क्या उसके अनुरूप ही शिष्ट–व्यवस्थित पोशाक और भद्र आचरण आपका है? उत्तर– हाँ।

9– जब आपको अतिरिक्त काम में कभी लगा दिया जाता है, तो क्या आपको वह स्थिति अप्रिय लगने लगती है? उत्तर– नहीं।

www.thearyasamaj.org

10– क्या विश्राम एवं अवकाश के वक्त भी आपको दफ्तर का काम करना पड़ता है? उत्तर– नहीं।

11– क्या प्रायः आप यह महसूस करते हैं कि दफ्तर में आपको ही सबसे ज्यादा काम करना पड़ता है? उत्तर– नहीं।

12– क्या आप वेतन एवं उन्नति की दृष्टि से अपने काम में और भी विकास करने के लिए तत्पर रहते हैं? उत्तर– हाँ।

13– क्या नये काम में कुछ दिन मन लगने के बाद आपका मन फिर परिवर्तन की कामना करने लगता है? उत्तर– नहीं।

14– क्या आप अपने सहकारियों के जीवन एवं उनकी दैनिक समस्याओं में अभिरुचि रखना पसन्द करते हैं? उत्तर– हाँ।

15– क्या आप अपने को दफ्तर में दिये गये कार्य–विशेष के लिए अनिवार्य मानते हैं? उत्तर– नहीं।

16–कोई भी व्यवसाय आपका हो, क्या आप यह महसूस करते हैं कि प्रामाणिकता की सदैव रक्षा होनी चाहिए? उत्तर– हाँ।

17– जब आपके सहकारियों को ऊँचा पद या अधिक वेतन मिलने लगता है, तो क्या आपको उनसे ईर्ष्या होने लगती है? उत्तर– नहीं।

18– दफ्तर के बाद क्या आप रोज बेहद थक जाते हैं? उत्तर– नहीं।

19– क्या आप अनुभव करते हैं कि, आपने काम में उन्नति के साथ–साथ अनायास ही जीवन–सुधार भी किया है? उत्तर– हाँ।

20– काम की संलग्नता ने क्या कभी आपको यह अनुभूति भी दी है कि, आनन्द स्वयं व्यक्ति में है, उसके बाहर नहीं? उत्तर– हाँ।

प्रश्न के प्रत्येक सही उत्तर के 5 अंक हैं। 20 के 100 अंक। यही आपके भीतर स्थित सफलता को मापने का पैमाना है।

40 से 50 तक के अंक स्पष्ट करते हैं कि, आप सफलता की परिधि में तो खड़े हैं, किन्तु उसके केन्द्र की ओर बढ़ना नहीं चाहते। तेजी से कदम बढ़ाइये, जरा!

51 से 60 तक के अंक स्पष्ट करते हैं कि आप सही दिशा में तो हैं, किन्तु अकसर भटक जाते हैं। रास्ते की रंगीनियों में अटक जाते हैं–अपने लक्ष्य पर ही दृष्टि रखिये–'**काम से काम दाता राम**' वाली कहावत चरितार्थ कीजिये।

61 से 75 तक अंक स्पष्ट करते हैं कि, आपने अपनी राह तो बना ली है, मगर अपनी प्रसुप्त शक्तियों का पूरा–पूरा अंदाजा आप नहीं लगा पाये हैं। थोड़ा और कुरेदिये अपने को। आपके भीतर सफलता के स्वर्ण की कमी कहाँ है?

76 से 100 तक के अंक स्पष्ट करते हैं कि आप संसार के गिनती के सफल व्यक्तियों में से एक हैं। ❁❁❁

www.thearyasamaj.org

लिया है तो वह निश्चित ही मूल सहित सूख जाता है। ऐसी ही दशा इस सोने की चिड़िया कहे जाने वाले भारतवर्ष देश की हो रही है। इसकी प्रत्येक शाखा पर ऐसी ही वृत्ति रखने वाले गिद्धों और बगुलों का बोल-बाला हो रहा है। यदि समय रहते इन गिद्धों और बगुलों को न हटाया गया तो जो कुछ बची सम्पन्न भारत की दशा है वह भी महान दुर्दशा में बदल जायेगी।

इसका मात्र समाधान वैदिक संस्कृति के आत्म-तत्व को आत्मसात् करने वाले स्वामी श्रद्धानन्द जैसे धीर-गम्भीर पवित्र व्यक्तित्वों द्वारा नेतृत्व प्रदान करना है। जिनका प्राप्त होना महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट साहित्य और आन्दोलनों के द्वारा सम्भव है। जब तक हमें सत्य-सिद्धान्तों के प्रति स्वामी श्रद्धानन्द जैसी श्रद्धा नहीं होगी। तब तक आधार बनना अत्यन्त कठिन है। संसार में प्रायः करके दो प्रकार के लोगों का बोलबाला है एक मूर्ख और दूसरे धूर्त्त। मूर्ख वह है जिसमें किसी प्रकार की समझ नहीं है। धूर्त्त वे हैं जो वस्तुस्थिति समझते हैं पर स्वार्थान्ध होकर सत्य का विनाश कर, मूर्खों को बहकाकर अपना काम सिद्ध कर लेते हैं। उनके लिए राष्ट्र व समाज भाड़ में जाओ। महर्षि दयानन्द महाराज ने आर्य समाज की स्थापना इसी मूर्खता और धूर्त्तता को समाप्त करने के लिए की थी। पर दुर्भाग्य से आर्यसमाज स्वयं ही ऐसी प्रवृत्तियों वाले लोगों के आगोश में आ गया है। अतः प्रबुद्ध आचार्यों से यही विनय है कि अपने को इन दोनों प्रवृत्तियों से बाहर निकालकर, लोभरुपी महामारी से पिण्ड छुड़ाकर, स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन से प्रेरणा लेकर तथा वैदिक सिद्धान्तों के प्रति श्रद्धालु बनकर राष्ट्र का पूर्ण हित करें और अपने जीवन को धन्य करें। यही स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान दिवस पर उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि होगी। गत कई वर्ष हमें आर्यसमाज के अन्दर आये ऐसे ही धूर्त्तों से संघर्ष करने में लग गये। आश्चर्य है उपदेशकों, साधु, संन्यासियों, प्रवक्ताओं के भेष में घूम रहे धूर्तों को अपने को प्रबुद्ध कहने वाले आर्य ही नहीं समझ पा रहे हैं और आर्यसमाज में उनका मान-सम्मान कर महर्षि दयानन्द की विचारधारा के साथ जगन्नाथ वाला कार्य कर रहे हैं। अतः इन बहुरुपियों को पहचान कर राष्ट्र-हित में इन्हें बाहर निकालकर आर्यसमाज की रक्षा करें।

❋❋❋

www.thearyasamaj.org

'तपोभूमि' दिसम्बर 2013 R.N.I. No. 2321/57 रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण	150.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
शंकर सर्वस्व	120.00	महिला गीतांजलि	10.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	क्या भूत होते हैं	10.00
नारी सर्वस्व	60.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
शुद्ध हनुमच्चरित	40.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
संस्कार चन्द्रिका प्रथम भाग	40.00	सच्चे गुच्छे	8.00
विदुर नीति	40.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	नवग्रह समीक्षा	6.00
चाणक्य नीति	40.00	आर्यसमाज और श्रीराम	6.00
वेद प्रभा	30.00	आचार्य श्रीराम शर्मा : एक सरल चिन्तन	5.00
शान्ति कथा (प्रेस में)		वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
नित्य कर्म विधि	30.00	गायत्री गौरव	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
बाल सत्यार्थ प्रकाश	25.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
यज्ञमय जीवन (प्रेस में)		सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
दो बहिनों की बातें	25.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
दो मित्रों की बातें (प्रेस में)	25.00	जीजा साले की बातें	5.00
मील का पत्थर (प्रेस में)		भागवत के नमकीन चुटकुले	5.00
सुमंगली (प्रेस में)		आदर्श पत्नी	5.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2013 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431

Yogendra # 9927136600

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित